अप्रैल, 2022

I.S.S.N. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री अविनाश शुक्ला

श्री असलम खान

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह

श्री जसवन्त सिंह

श्री जाह्नवी शेखर शर्मा

श्री अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN-2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2022 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2022 अंक - 4

प्रधान संपादक

कमला कान्त

संपादक

असलम खान

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

(2022) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

जब कभी यह प्रश्न उद्भूत होता है कि किसी राज्य का विभाजन होने की दशा में उस राज्य के कर्मचारी नए सृजित राज्य में विलय हो जाते हैं तो उनके सेवानिवृत्त होने पर सेवानिवृत्ति लाभों का अवधारण उस राज्य द्वारा या नए सृजित राज्य द्वारा किया जाएगा और प्रत्येक राज्य के दायित्व की सीमा क्या होगी ? इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने **माधो सिंह और अन्य** बनाम **रजिस्ट्रार, कोऑपरेटिव सोसाइटी और अन्य** (2022) 1 सि. नि. प. 423 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि किसी राज्य को पुनर्गठन अधिनियम के अधीन विभाजित किया जाता है और उस राज्य के कर्मचारियों का विलय नए सृजित राज्य में किया जाता है तो सेवानिवृत्ति लाभों अर्थात् उपदान, अर्जित छुट्टी नकदीकरण इत्यादि के लिए आनुपातिक दायित्व पूर्ववर्ती राज्य के साथ ही उस नए सृजित राज्य का भी होगा जिसमें संबंधित कर्मचारियों का विलय हुआ है और उनके लाभों की संगणना का अवधारण नए सृजित राज्य द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर होगा ।

प्रश्न यह उद्भूत होता है कि किसी शिशु की अभिरक्षा सौंपते समय न्यायालय को किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए । इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने **ललित कुमार जटवार** बनाम **श्रीमती सुषमा जटवार** (2022) 1 सि. नि. प. 488 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि यदि माता-पिता के बीच विवाद के कारण शिशु के पालन-पोषण एवं अभिरक्षा संबंधी वाद फाइल किया जाता है तो माता-पिता में से किसी को भी मिलने और स्पर्श करने का अधिकार और अभिरक्षा में देने का विनिश्चय करते समय शिशु का सर्वोपरि हित और उसके नैसर्गिक अधिकारों को ध्यान में रखना चाहिए और यथासम्भव दोनों माता-पिता का स्पर्श, स्नेह और प्यार पाने से शिशु को गम्भीर परिस्थितियों में ही वंचित करना चाहिए ।

इस अंक में, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के हिन्दी पाठ को भी प्रकाशित किया जा रहा है

जो पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक और अतिमहत्वपूर्ण हैं जिसका परिशीलन किया जा सकता है । उपर्युक्त निर्णयों के अतिरिक्त अन्य कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय प्रकाशित किए जा रहे हैं जो विधि-विद्यार्थियों, अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों, विधि-अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए अत्यंत लाभकारी साबित होंगे ।

कमला कान्त, परामर्शदाता
प्रभारी – उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2022

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
एस. सी. सोनी **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य	506
निर्मला देवी **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	559
माधो सिंह नेगी और अन्य **बनाम** रजिस्ट्रार, कोऑपरेटिव सोसाइटी और अन्य	423
रविन्दर सिंह **बनाम** राय सिंह और अन्य	525
ललित कुमार जटवार **बनाम** श्रीमती सुषमा जटवार	488
श्री दुर्गा सिंह **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य मार्फत सचिव (एचपीपीडब्ल्यूडी), शिमला-1 और अन्य	542

संसद् के अधिनियम

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का हिंदी में प्राधिकृत पाठ	1 - 15

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 19 [सपठित संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 4, 6, 7, 8, 17 और 35] – शिशु की अभिरक्षा – माता-पिता का मिलने और स्पर्श करने का अधिकार – शिशु का हित सर्वोपरि होना – यदि माता-पिता के बीच विवाद के कारण शिशु के पालन-पोषण एवं अभिरक्षा संबंधी वाद फाइल किया जाता है तो माता-पिता में से किसी को भी मिलने और स्पर्श करने का अधिकार और अभिरक्षा में देने का विनिश्चय करते समय शिशु का सर्वोपरि हित और उसके नैसगिक अधिकारों को ध्यान में रखना चाहिए और यथासम्भव दोनों माता-पिता का स्पर्श, स्नेह और प्यार पाने से शिशु को गम्भीर परिस्थितियों में ही वंचित करना चाहिए ।

ललित कुमार जटवार बनाम **श्रीमती सुषमा जटवार** 488

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 [उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 54 और धारा 7] – रिट – राज्य पुनर्गठन के अधीन राज्य का विभाजन – उस राज्य के कर्मचारियों का नए सृजित राज्य में विलय – कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति लाभों के लिए दायित्व – का अवधारण कर्मचारियों की मूल नियुक्ति की तारीख से नहीं अपितु विलय की तारीख से अवधारण किया जाना – आक्षेप – यदि किसी राज्य को पुनर्गठन अधिनियम के अधीन विभाजित किया जाता है

पृष्ठ संख्या

और उस राज्य के कर्मचारियों का विलय नए सृजित राज्य में किया जाता है तो सेवानिवृत्ति लाभों अर्थात् उपदान, अर्जित छुट्टी नकदीकरण इत्यादि के लिए आनुपातिक दायित्व पूर्ववर्ती राज्य के साथ ही उस नए सृजित राज्य का भी होगा जिसमें संबंधित कर्मचारियों का विलय हुआ है और उनके लाभों की संगणना का अवधारण नए सृजित राज्य द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर होगा ।

माधो सिंह और अन्य बनाम **रजिस्ट्रार, कोऑपरेटिव सोसाइटी और अन्य** 423

– अनुच्छेद 226 [सपठित छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1966 का नियम 10] – याची के विरुद्ध लापरवाही और आर्थिक अनियमितता के लिए कारण बताओ नोटिस जारी होना – याची द्वारा समयावधि के भीतर उसका उत्तर फाइल करना – विभाग द्वारा मामले का निपटारा करने में विलम्ब करना – मामला लम्बित रहने के दौरान याची के समान रैंक के अधिकारियों की पदोन्नति के लिए डीपीसी गठित होना – याची का नाम लिफाफा बन्द होना जिसमें याची की भी पदोन्नति होना – याची द्वारा डीपीसी की तारीख से पदोन्नति सम्बन्धी लाभों का दावा करना – विभाग द्वारा इनकार करना और लिफाफा खुलने की तारीख से लाभों का संदाय किया जाना – यदि किसी कर्मचारी के विरुद्ध लापरवाही और आर्थिक अनियमितता के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है और मामला लम्बित रहने के दौरान उसी के रैंक के अन्य कर्मचारियों की प्रोन्नति के लिए डीपीसी

पृष्ठ संख्या

गठित होती है और डीपीसी की बैठक में उस कर्मचारी की प्रोन्नति के लिए नाम भी लिफाफा बन्द में रखा जाता है तो यदि वह कर्मचारी सभी आरोपों से दोषमुक्त हो जाता है तो उसे प्रोन्नति सम्बन्धी लाभ उसी तारीख से प्राप्त होंगे जिस तारीख को अन्यों के साथ उसका नाम लिफाफा बन्द में रखा गया था न कि लिफाफा खोलने की तारीख से ।

एस. सी. सोनी बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य** 506

– अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश सड़क अवसंरचना (संरक्षण) अधिनियम, 2002 की धारा 4 तथा भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 11] – रिट – राज्य द्वारा लोक प्रयोजन के लिए भूमि अधिगृहित करना – अधिगृहित भूमि का लोक प्रयोजन के उपयोग में लाना – अधिगृहित भूमि के संबंध में अधिसूचना जारी नहीं होना – अधिगृहित भूमि के एवज में कोई प्रतिकर संदाय नहीं करना – यदि कोई राज्य लोक प्रयोजन हेतु किसी भूमि का अधिग्रहण करता है और उस भूमि का उपयोग उस प्रयोजनार्थ उपयोग में लाया जाता है तो संबंधित अधिगृहित भूमि के लिए प्रतिकर संदाय करने का दायित्व राज्य का होगा – वह इस आधार पर प्रतिकर संदाय करने के दायित्व से बच नहीं सकता है कि संबंधित भूमि के संबंध में अधिसूचना जारी नहीं की गई है ।

श्री दुर्गा सिंह बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य मार्फत सचिव (एचपीपीडब्ल्डूडी), शिमला-1 और अन्य** 542

– अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 123 और धारा 130(3)]

पृष्ठ संख्या

– रिट – अचल सम्पत्ति का विभाजन – विभाजन का तरीका नियत किया जाना – विभाजन नियत तरीके से किया जाना – आक्षेप – यदि किसी अचल सम्पत्ति का विभाजन न्यायालय द्वारा नियत तरीके के अनुसार किया जाता है और विभाजन का तरीका नियत करने की कार्यवाही में सभी पक्षों को सम्मिलित होने और अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है और उसके बाद नियत तरीके से सम्पत्ति का विभाजन कर दिया जाता है तो बाद में सम्बन्धित पक्षकारों को उस पर आक्षेप करने का हक नहीं होता है ।

निर्मला देवी बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 559

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 और आदेश 39 – द्वितीय अपील – स्थायी सम्पत्ति – व्यादेश – अनन्य कब्जा – यदि किसी स्थायी सम्पत्ति के कई स्वामी है और वे एक-दूसरे की आपसी सहमति से पृथक्-पृथक् कब्जे में हैं तो भी जब तक उस सम्पत्ति का विधि के अनुसार विभाजन नहीं हो जाता है तब तक उस सम्पत्ति का प्रत्येक सह-स्वामी अपने कब्जे वाली सम्पत्ति का अनन्य कब्जे का दावा नहीं कर सकता है – अनन्य कब्जे में रहने वाला एक सह-अंशधारी को भी उसके कब्जे वाली भूमि पर निर्माण करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है जब तक कि माप और सीमा द्वारा उसका विभाजन नहीं हो जाता है ।

रविन्दर सिंह बनाम **राय सिंह और अन्य** 525

माधो सिंह नेगी और अन्य

बनाम

रजिस्ट्रार, कोऑपरेटिव सोसाइटी और अन्य

[2020 की रिट याचिका संख्या (एस/एस) 1348]

तारीख 28 जनवरी, 2022

न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 54 और धारा 7] – रिट – राज्य पुनर्गठन के अधीन राज्य का विभाजन – उस राज्य के कर्मचारियों का नए सृजित राज्य में विलय – कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति लाभों के लिए दायित्व – का अवधारण कर्मचारियों की मूल नियुक्ति की तारीख से नहीं अपितु विलय की तारीख से अवधारण किया जाना – आक्षेप – यदि किसी राज्य को पुनर्गठन अधिनियम के अधीन विभाजित किया जाता है और उस राज्य के कर्मचारियों का विलय नए सृजित राज्य में किया जाता है तो सेवानिवृत्ति लाभों अर्थात् उपदान, अर्जित छुट्टी नकदीकरण इत्यादि के लिए आनुपातिक दायित्व पूर्ववर्ती राज्य के साथ ही उस नए सृजित राज्य का भी होगा जिसमें संबंधित कर्मचारियों का विलय हुआ है और उनके लाभों की संगणना का अवधारण नए सृजित राज्य द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर होगा ।

वर्तमान मामले में, उत्तर प्रदेश राज्य में, स्वीकृततः रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह के सभी याचियों को आरम्भतः नियुक्त किया गया था और वे उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड में कार्य कर रहे थे जो बाद में, उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तराखंड के दो सहकारी संघों के मध्य समझौता ज्ञापन के आधार पर समझौते के कारण उत्तर प्रदेश सहकारी

संघ लिमिटेड के साथ कार्य करने वाले कर्मचारी । बाद में, उनके विकल्प पर, या अन्यथा भी, उनकी सेवाएं स्वीकृत रूप से उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ विलय कर दी गई थीं । इसके परिणामस्वरूप, जब ये विशेष याची, उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ अपनी सेवा के विलय के बाद, अपनी-अपनी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके तब यह विवाद उत्पन्न हुआ कि किस तरीके से, विभिन्न शीर्षों के अधीन विधिक रूप से देय सेवानिवृत्ति लाभ, जैसा कि ऊपर विस्तृत किया गया है, राज्य के दो सहकारी संघों पर दायित्व के रूप में अधिरोपित किए जाने के लिए विभाजित किए जाएं । इस कारण से कि अधिकांश मामलों में, याची जिनकी सेवाओं को बाद में विलय कर दिया गया, उन्होंने अपनी सेवाओं का आंशिक रूप से कार्य उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड के साथ किया है और उसके बाद, विलय के परिणामस्वरूप अपनी सेवाओं का एक निश्चित और निर्दिष्ट कार्यकाल के लिए, उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ कार्य किया और बाद में, उन्होंने उत्तराखंड सहकारी संघ से अपनी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली । इस विवाद्यक को अलग-अलग दृष्टिकोण से निपटाया जाएगा और विशेष रूप से अत्यधिक प्रमुख उपबंधों में से एक जिसका इस विवाद्यक पर प्रभाव होगा वह यह है कि उत्तर प्रदेश के साथ कार्य करने वाले कर्मचारियों की सेवाओं के विलय का परिणामी प्रभाव क्या होगा । सहकारी संघ जब उनकी सेवाओं का उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय कर दिया गया और इसका परिणामी प्रभाव, उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 का विलय किए गए कर्मचारियों की सेवा शर्तों पर क्या प्रभाव होगा, जिनकी सेवाओं को इस प्रकार उत्तराखंड सहकारी संघ में विलय कर दिया गया है क्योंकि व्यापक सिद्धातों के अनुसार जो उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, धारा 54 के अधीन अधिकथित किए गए थे, वास्तव में, इसके अधीन यह माना था कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड से कर्मचारियों का सेवाओं के उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ विलय के परिणामस्वरूप और उस मामले के लिए भी राज्य या किसी अन्य निगम के किसी अन्य कर्मचारी के संबंध में, यह अधिकथित था कि उनकी सेवाओं के विलय के

परिणामस्वरूप राज्य के विभाजन के परिणामस्वरूप या नए निगम या जैसी भी स्थिति हो, संघ के सृजन के परिणामस्वरूप जब कर्मचारियों की सेवाओं का इस प्रकार विलय होता है, तो यह किसी भी रीति से उनके सेवा लाभों के लिए नुकसानदायक नहीं हो सकता है, जो वे अन्यथा प्राप्त करने के हकदार होते है, अगर राज्य का विभाजन तारीख 9 नवंबर, 2000 को प्रभावी पुनर्गठन अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नहीं किया गया होता । वास्तव में, इसका मूल आशय और उद्देश्य यह था कि राजनीतिक या सांविधानिक संशोधन के कारण 2000 का उ. प्र. पुनर्गठन अधिनियम का प्रवर्तन करना वस्तुतः वे कर्मचारी जो इस प्रकार, दो नव सृजित राज्यों, अर्थात् उत्तराखंड राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य में अपने-अपने कार्य कर रहे थे, उनके हित और परिणामी सेवा लाभों को उन्हें निरन्तर देय बनाना था और इसे बिना किसी नुकसान के संरक्षित किया जाना था । इसके परिणामस्वरूप, इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए विवाद उद्भूत हुआ कि उन कर्मचारियों के संबंध में सेवाओं की शर्तों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जिनकी सेवाएं बाद में उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप उसमें विलय हो गईं और उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ संबंधित सेवाओं के उनके विलय के लाभों का प्रभाव क्या था । न्यायालय द्वारा रिट याचिकाएं मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पुनर्गठन अधिनियम, 2020 की धारा 54 के निहितार्थ को पुनर्गठन अधिनियम के भाग VIII की धारा 74 के अधीन अंर्तवलित उपबंधों के साथ परिशीलन करना है, जिसमें इसके पहले परंतुक में यह उपबंध किया गया है कि पुनर्गठन अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन के परिणामस्वरूप, राज्य या कानून के अधीन सृजित निगमों के साथ कार्यरत कर्मचारियों की सेवाएं, उनकी सेवाओं के विलय पर, उनकी सेवा शर्तों को उनके हित के लिए नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता और उन्हें एक नुकसान की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है, जिसे वे अन्यथा प्राप्त करने के हकदार होते हैं, यदि राज्यों को राजनीतिक और विधायी कारणों से विभाजित नहीं किया जाता और क्योंकि उनका हित कानूनी रूप से संरक्षित होता है, तो वे पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 के अधीन विधिक रूप से प्राप्त किए गए संरक्षण के अधीन सेवानिवृत्ति

लाभ प्रदान करने के हकदार होते हैं । उपरोक्त संविक्षा के आधार पर, निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं – (i) उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में स्वीकृत तथ्य यह है कि याचियों या कुछ मामलों में याचियों के पूर्वाधिकारों ने आरम्भ में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ की सेवाओं में सम्मिलित हुए थे । (ii) यह एक स्वीकृत तथ्य है कि तारीख 9 नवंबर, 2000 से उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप, उत्तराखंड राज्य के लिए एक स्वतंत्र सहकारी संघ तारीख 1 जनवरी, 2005 से अस्तित्व में आया और उन कर्मचारियों की सेवाएं, जो उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तराखंड राज्य के दो सहकारी संघों के सचिवों के मध्य हुए समझौता ज्ञापन में सूचीबद्ध थे या अन्यथा भी उनकी सेवाएं तारीख 1 जनवरी, 2005 से उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय हो गई थीं । (iii) रिट याचिकाओं के पक्षकारों का यह भी एक स्वीकृत पक्षकथन है कि सभी याचियों ने अपनी सेवा का कार्यकाल संतोषजनक रूप से पूरा करने के बाद अपनी-अपनी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप अधिवार्षिता की आयु प्राप्त कर चुके है, जैसा कि ऊपर विस्तृत चर्चा की गई है, जो पात्रता के अनुसार, संघों पर लागू सुसंगत सेवा नियम के अधीन, वे उपदान रकम के साथ ही छुट्टी नकदीकरण रकम और उसके साथ ही वेतन आयोग के लाभ के बकाया आदि के प्राप्त करने के हकदार हैं । (iv) रिट याचिकाओं के सभी पक्षों का यह एक स्वीकृत पक्षकथन है कि उत्तराखंड सहकारी संघ से अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने पर, उत्तराखंड सहकारी संघ ने उनके पक्ष में अंतिम वेतन प्रमाणपत्र जारी किया था जिस पर उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा किसी भी स्तर पर विवादित नहीं किया गया था, जिसे उनकी सेवानिवृत्ति लाभों के अवधारण के उद्देश्यों के आधार के रूप में लिया जाना था, सिद्घातों के अनुसार, जो निर्णय द्वारा अवधारित किया गया था जैसा कि 2014 की रिट याचिका सं. 738 राजेंद्र सिंह और अन्य वाले मामले में, तारीख 25 फरवरी, 2015 में दिया गया था, जिसे 2015 की विशेष अपील सं. 137 में और एस.एल.पी. में भी तारीख 2 मार्च, 2020 को खारिज कर दिया गया था, जिसका अर्थ है अंततः सभी मामलों में, सेवा के किसी भी कार्यकाल के लिए, चाहे वह उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ की गई हो या उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ सेवाओं के विलय के बाद, उपदान,

अर्जित अवकाश और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का अवधारण अनिवार्य रूप से निर्विवाद अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर किया जाना आवश्यक था जो सेवानिवृत्त लोगों के पक्ष में जारी किए गए थे, अर्थात् रिट याचिकाओं के इन समूह के याचियों के पक्ष में जारी किए गए थे । (v) यह भी स्वीकृत पक्षकथन है और जैसा उत्तराखंड सहकारी संघ और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा फाइल किए गए संबंधित प्रति-शपथपत्र से भी स्पष्ट होता है कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ में याचियों द्वारा की गई सेवाओं के कार्यकाल के संबंध हैं, याचियों के उपदान और छुट्टी नकदीकरण की रकम के प्रेषण के संबंध में विवाद में नहीं हैं, क्योंकि यह अवधारित किया गया है कि संबंधित याचियों के पक्ष में जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा देय और संदत्त किया जाएगा । (vi) यह भी विवादित नहीं है और अभिलेखों से भी स्पष्ट है कि जिनको उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा समान रूप से ध्यान दिया गया है कि जब उन्होंने, याचियों की उपदान और अर्जित छुट्टी नकदीकरण प्राप्त करने के हक से संबंधित कुल वित्तीय जटिलताएं अवधारित किए और अपने हिस्से का संदाय करते समय, उत्तराखंड सहकारी संघ से भी इसी प्रकार की सिफारिश की है कि वे प्रत्येक सेवानिवृत्त याची के संबंध में, याचियों द्वारा की गई सेवाओं की अवधि के लिए रकम का अवधारण करें और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उनकी नियुक्ति की प्रारंभिक तारीख से संदाय करने के लिए, उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ अपनी सेवाओं के विलय के बाद अपनी सेवाएं प्रदान की हैं । (vii) यह भी विवादित नहीं है और बल्कि इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा लिए गए विनिश्चय से यह सुस्थिर भी है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का कर्मचारी उसे देय उपदान, अर्जित छुट्टी और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का पूर्ण हकदार है, जो पहले के उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ की गई सेवाओं की अवधि के आधार पर आनुपातिक रूप से विभाजित किया जाना था और सेवाओं की अवधि के संबंध में जो उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ की गई थी और दोनों राज्यों के प्रत्येक संबंधित सहकारी संघ उनके साथ कर्मचारियों द्वारा की गई सेवाओं की अवधि के आधार पर दायित्व का अपना हिस्सा वहन करेगा । (viii) यह विवादित नहीं है और माननीय

उच्चतम न्यायालय भी यह सुस्थापित किया है कि प्रदान की गई सेवाओं की किसी अवधि के लिए सेवानिवृत्ति लाभों का अवधारण या तो उत्तराखंड सहकारी संघ या उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा किसी कर्मचारी की अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने पर उसके पक्ष में जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर किया जाना था । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ किसी कर्मचारी से अंतिम वेतन प्रमाणपत्र नहीं ले सकता है जो उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ उसकी सेवाओं के विलय की तारीख पर विद्यमान था, जो उत्तराखण्ड सहकारी संघ में उनके कर्मचारियों द्वारा सेवाओं के विलय के पूर्व प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए उपदान और अर्जित छुट्टी नकदीकरण अवधारित करने का मापदंड है । (पैरा 71 और 72)

इस न्यायालय के समक्ष लम्बित मामलों और याचियों में से प्रत्येक के संबंध में इस पहलू से निपटने की आवश्यकता इसलिए आवश्यक हो गई क्योंकि वे दशकों से एक साथ सुसंगत मुकदमा होने के बावजूद और इस तथ्य के बावजूद कि संविवाद, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद अब किसी भी न्यायालय के समक्ष लंबित नहीं हैं, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अपने स्वयं के विवेक और सनक के आधार पर सेवानिवृत्त कर्मचारियों को उनके वास्तविक अधिकार के साथ समुचित रूप से उपदान की रकम और अर्जित छुट्टी नकदीकरण पारिश्रमिक नहीं दिया । इसलिए विवाद निम्नलिखित दृष्टिकोण से उद्भूत हुआ – (क) चूंकि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर सेवानिवृत्ति रकम का संदाय नहीं कर रहा था, जो उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था, याचियों ने अपनी अधिवार्षिता की आयु प्राप्ति पर परमादेश रिट जारी करने की मांग की है, कि प्रत्यर्थियों अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र प्रदान करने और अर्जित छुट्टी नकदीकरण और उन्हें देय अन्य सेवानिवृत्ति देय रकम का अवधारण करने का निदेश दिया जा सकता है जबकि यह उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा नहीं किया जा रहा था, इसलिए, रिट याचिकाएं फाइल की हैं । (ख) विवाद तब उद्भूत हुआ जब

उत्तर प्रदेश सहकारी संघ वास्तविक ब्यौरे के अनुसार, जैसा कि उसने पहले उपरोक्त चर्चा की है, ने आंशिक रूप से रकम का संदाय किया था और आंशिक रूप से उन्होंने इस बहाने से रकम प्रेषित करने से इनकार कर दिया है कि चूंकि दोनों संघों के मध्य दायित्वों का समझौता ज्ञापन के आधार पर तय किया जाना बाकी है, और 2.27 करोड़ रुपए की शेष रकम का निपटारा किया जाना बाकी है तो शेष रकम का संदाय किया जाएगा, वस्तुतः, इस विवाद्यक पर भी इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि किसी भी प्रशासनिक परिस्थितियों के अधीन सेवानिवृत्त कर्मचारियों को किसी भी रीति से पीड़ित नहीं किया जा सकता है भले ही दोनों संघों के मध्य उनकी संपत्तियों और दायित्वों के निपटान में कोई विवाद हैं, जो विशेष रूप से एक अलग विवाद्यक है, लाभों के लिए, जो अन्यथा कर्मचारियों के पक्ष में संरक्षित हैं, उपबंधों को ध्यान में रखते हुए पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 के उपबंधों के साथ परिशीलन किया जाना चाहिए, जो धारा 54 में अंतर्वलित हैं । (ग) यह विवाद्यक पहले भी झगड़े की जड़ थी कि सेवाओं का अंतराल; तारीख 1 जनवरी, 2005 से उनकी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप, जिन कर्मचारियों की सेवाओं का इस प्रकार विलय हो गया था, उनकी नियुक्ति का संबंधित तारिख से अधिवार्षिता की आयु प्राप्त होने तक सेवाओं की निरंतरता पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, जब मध्य की अवधि के दौरान राजनीतिक और विधायी निर्णयों के कारण याचियों की सेवाओं को दो संघों में विभाजित कर दिया गया है, क्या इसे सेवानिवृत्ति लाभों के निपटारे के उद्देश्यों के लिए निरंतरता में सेवा माना जाएगा । उपरोक्त विवाद के कारण, जो एक सामान्य बोलचाल के अधीन और विशेष रूप से पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 के उपबंध के साथ धारा 54 के सुसंगत निर्वचन से उद्भूत हुआ है, इस न्यायालय का यह मत है कि उत्तराखंड सहकारी संघ के सृजन के परिणामस्वरूप, पुनर्गठन अधिनियम के विधायी निहितार्थ के कारण, मेरा यह मत है कि याचियों और उनके पूर्ववर्तियों की सेवाओं को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उनकी प्रासंगिक नियुक्ति की उनकी संबंधित तारीख से निरंतरता में किया गया

एक ही सेवा माना जाएगा और तार्किक रूप से भी इसे उसके पश्चात्वर्ती उत्तराखंड सहकारी संघ से सेवानिवृत्ति कर्मचारियों से संबंधित सेवानिवृत्ति के लाभों के अवधारण या संगणना के उद्देश्यों के लिए उनकी सेवा में एक त्वरित या विराम के रूप में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि इसे पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 के साथ-साथ धारा 74 के उपबंधों के अधीन संरक्षित किया गया है । इसलिए, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ में शामिल होने की तारीख से सेवाओं की उक्त अवधि, उत्तराखंड सहकारी संघ से उनकी सेवाओं के विलय होने के बाद संबंधित सेवानिवृत्ति की तारीख तक, कर्मचारियों को सभी सेवा लाभों के अनुदान के लिए निरंतरता में एक समान सेवा के रूप में माना जाएगा, जो वे अन्यथा विधि के अनुसार हकदार होते, दोनों सहकारी संघ, उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप सृजित नहीं हुए थे । दलील जिसका उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा विस्तार किया गया था कि उस अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर इसे अवधारित करते हुए, कर्मचारी को सेवानिवृत्ति लाभों का संदाय करने के लिए वे बाध्य नहीं हो सकते हैं जिसे कर्मचारी की अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने की तारीख को उत्तराखण्ड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था क्योंकि उनका दायित्व उसके ऊपर नहीं डाला जा सकता है और वे मात्र उनका दायित्व सेवानिवृत्त लाभों तक सीमित है जो सेवाओं में विलय की तारीख पर संबंधित कर्मचारियों द्वारा आहरित अंतिम वेतन पर आधारित है, यह एक तर्क है जो इस न्यायालय द्वारा स्वीकार्य नहीं है, इस कारण से कि इस विवाद्यक को इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के तारीख 3 जुलाई, 2017 को दिए गए निर्णय में पहले ही अधिकथित किया जा चुका है, जिसकी बाद में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 2 मार्च, 2020 दिए गए निर्णय में अभिपुष्टि की गई थी । चूंकि, इस न्यायालय का यह दृष्टिकोण है कि उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र, जो सेवानिवृत्ति लाभों की संगणना का आधार है, वस्तुतः, यह एक अधिरोपित परिस्थितियां थीं जो राज्य के सृजन के कारण प्रकृति में विशिष्ट थीं । जहां तक किसी राज्य का सृजन या उत्तर प्रदेश राज्य के दो संघों और उत्तराखण्ड राज्य को विभाजित करने

का निर्णय का संबंध है, वास्तव में, कर्मचारियों का इसमें कोई योगदान नहीं था, और उस स्थिति में, संचयी लाभों, जो एक कर्मचारी को प्राप्त होते हैं, ऐसे संघों का विभाजन नहीं हुआ था क्योंकि उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप, याची अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर सेवानिवृत्ति लाभों के अवधारण के लिए हकदार था जो अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने की संबंधित तारीख को उसके पक्ष में जारी किए गए थे । यह सादृश्य अधिनियम की धारा 74 के उपबंध के अधीन संरक्षित आधार भी हैं जिसे इसके परन्तुक के साथ परिशीलन किया जाना चाहिए । पूर्वोक्त कारणों से, रिट याचिकाओं के इन सभी समूहों को उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ के साथ मंजूर किया जाता है, चूंकि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि उत्तराखंड सहकारी संघ ने पहले ही अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर जो उनके द्वारा जारी की गई थी, रकम प्रेषित कर दी हैं, अतएव, उत्तराखंड सहकारी संघ के लिए कोई परमादेश रिट जारी किए जाने की आवश्यकता नहीं है । जहां तक उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का संबंध है, निम्नलिखित परमादेश रिट जारी किया जाता है – यह है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, उत्तराखंड सहकारी संघ उपदान संदाय अधिनियम की धारा 7(3)क के अधीन उपदान, अर्जित अवकाश और रोकी गई रकम पर देय ब्याज का बकाया अवधारित करना सुनिश्चित करेगा, उस सेवा अवधि के लिए जो अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था, उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ के साथ संबंधित याचियों द्वारा प्रदान की गई हैं । एतद्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि दोनों सहकारी संघों के मध्य विवाद जो समझौता ज्ञापन के निबंधनों पर अधारित हैं जिसे कभी-कभी उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में दर्शाया गया है, इस न्यायालय का यह मत है कि सेवानिवृत्त कर्मचारियों की संबंधित आयु को देखते हुए, उनके निपटान के निबंधन सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण में कोई बाधा पैदा नहीं करेगें, क्योंकि इन सभी विवाद्यकों को ऊपरनिर्दिष्ट खण्ड न्यायपीठ के निर्णयों द्वारा पहले ही निपटारा कर दिया गया है । उस संदर्भ में कोई लापरवाही अवमानना भी होगी । इसलिए, एतद्द्वारा, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को धारा

7(क) के अधीन उस पर देय कानूनी ब्याज के साथ उपदान, अर्जित अवकाश और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ याचियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र पर आधारित, खण्ड न्यायपीठ द्वारा यथाविनिश्चित दर पर संदाय करने का निदेश दिया जाता है और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को इस निर्णय की सत्यापित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो मास की अवधि के भीतर रकम प्रेषित करने का निदेश दिया जाता है । एतद्द्वारा, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को निर्णय के अनुपालन की रिपोर्ट निर्णय देने की तारीख से एक मास के भीतर देने का निदेश दिया जाता हैं । यह भी कि पूर्वसावधानी के एक उपाय के रूप में, यह मत व्यक्त किया जाता है कि यदि कोई धनराशि पहले ही उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने याचियों में से किसी को प्रेषित कर दी है तो उसे तद्नुसार, संबंधित अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर सेवानिवृत्त कर्मचारी को अंतिम संदाय करते हुए समायोजित किया जाएगा । (पैरा 73, 74, 75, 76 और 77)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 369 : **अजीत सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	44
[2021]	2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं 374 : **ओम प्रकाश** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	51
[2021]	2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 389 : **गणेश प्रसाद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	55
[2021]	2021 की रिट याचिका सं. 434 : **श्रीनिवास कश्यप** बनाम **उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	59

[2021]	2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 485 : **आशुतोष श्रीवास्तव** बनाम **उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	63
[2020]	2020 की एस.एल.पी. (सी) सं. 5914 : **प्रबंध निदेशक**, **पी.सी.एफ.**, **लखनऊ** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ और अन्य** ;	8
[2020]	2020 की रिट याचिका सं. 1348 : **माधो सिंह नेगी** बनाम **निबंधक, सहकारी समितियां और अन्य** ;	14
[2020]	2020 की रिट याचिका सं. 1453 : **गिरिश चंद्र जोशी** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	17
[2020]	2020 की रिट याचिका सं. 1460 : **दमयंती हसन** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	25
[2020]	2020 की रिट याचिका सं. 1454 : **सरदार सिंह गुसैन** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	20
[2020]	2020 की रिट याचिका सं. 1854 : **घनश्याम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	31
[2020]	2020 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 1902 : **चंडी प्रसाद रतुरी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	37
[2020]	2020 की रिट याचिका सं. 1828 : **नरेंद्र सिंह नेगी** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	67
[2018]	2018 की रिट याचिका 448 : **चंद्र मोहन अरोड़ा** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** ;	5,8,70

[2014]	2014 की सिविल अपील सं. 7113 : **डी. डी. तिवारी** बनाम **उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड और अन्य** ;	9
[2012]	2012 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 33 : **सरदार सिंह गुसाई** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ और अन्य** ;	20
[2011]	2011 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 210 : **डेविड आरिफ हसन** बनाम **उत्तर प्रदेश सहकारी संघ और अन्य** ;	28
[2011]	2011 की रिट याचिका सं. 212 : **अजीत सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य** ;	44
[2006]	2006 की विशेष अपील सं. 176 : **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **आनंद स्वरूप और अन्य** ;	28
[2005]	2005 की पूर्ववर्ती रिट याचिका (एस/एस) सं. 1176 : **आनंद स्वरूप** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ और अन्य** ।	45

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2020 की रिट याचिका संख्या (एस/एस) 1348 (इसके साथ 1453, 1454, 1460, 1854, 1902, 1828) तथा 2021 की 369, 274, 389, 434 और 485.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री हरेन्द्र बेलवाल

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सुभाष उपाध्याय, काउंसेल (उत्तराखंड कोऑपरेटिव संघ की ओर से), श्री आशिष जोशी, काउंसेल (उत्तर प्रदेश कोऑपरेटिव संघ की ओर से)

निर्णय

न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा – व्यापक रूप से, यह विवाद्यक, जो रिट याचिकाओं के इन समूहों में विचाराधीन है, संबंधित याचियों या उनके उतराधिकारियों (कुछ रिट याचिकाओं में), जो सेवानिवृत्त कर्मचारी हैं, के दायित्व के अवधारण के मुद्दे से संबंधित है, जो उपदान की रकम, छुट्टी नकदीकरण, एसीपी के लाभ, वेतन के बकाया और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण के उद्देश्यों के लिए है, और किस रीति से, इसे विभाजित किया जाना है, निपटाया जाना है और दोनों राज्यों के संबंधित सहकारी संघों, अर्थात् उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड और उ. प्र. सहकारी संघ लिमिटेड को संदाय के लिए उत्तरदायी बनाया जाना है और किस विनिर्दिष्ट अधिकथित मानदंड का अनुसरण किया जाना है ।

2. समग्र विश्लेषण पर, विचार के लिए मूल विवाद यह है कि अविभाजित उत्तर प्रदेश राज्य में, स्वीकृततः रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह के सभी याचियों को आरम्भतः नियुक्त किया गया था और वे उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड में कार्य कर रहे थे जो बाद में, उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तराखंड के दो सहकारी संघों के मध्य समझौता ज्ञापन के आधार पर समझौते के कारण उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड के साथ कार्य करने वाले कर्मचारी । बाद में, उनके विकल्प पर, या अन्यथा भी, उनकी सेवाएं स्वीकृत रूप से उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ विलय कर दी गई थीं ।

3. इसके परिणामस्वरूप, जब ये विशेष याची, उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ अपनी सेवा के विलय के बाद, अपनी-अपनी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके तब यह विवाद उत्पन्न हुआ कि किस तरीके से, विभिन्न शीर्षों के अधीन विधिक रूप से देय सेवानिवृत्ति लाभ, जैसा कि ऊपर विस्तृत किया गया है, राज्य के दो सहकारी संघों पर दायित्व के रूप में अधिरोपित किए जाने के लिए विभाजित किए जाएं । इस कारण से कि अधिकांश मामलों में, याची जिनकी सेवाओं को बाद में विलय कर दिया गया, उन्होंने अपनी सेवाओं का आंशिक रूप से कार्य उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड के साथ किया है और उसके बाद, विलय के परिणामस्वरूप अपनी सेवाओं का एक निश्चित और

निर्दिष्ट कार्यकाल के लिए, उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ कार्य किया और बाद में, उन्होंने उत्तराखंड सहकारी संघ से अपनी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली ।

4. इस विवाद्यक को अलग-अलग दृष्टिकोण से निपटाया जाएगा और विशेष रूप से अत्यधिक प्रमुख उपबंधों में से एक जिसका इस विवाद्यक पर प्रभाव होगा वह यह है कि उत्तर प्रदेश के साथ कार्य करने वाले कर्मचारियों की सेवाओं के विलय का परिणामी प्रभाव क्या होगा । सहकारी संघ जब उनकी सेवाओं का उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय कर दिया गया और इसका परिणामी प्रभाव, उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 का विलय किए गए कर्मचारियों की सेवा शर्तों पर क्या प्रभाव होगा, जिनकी सेवाओं को इस प्रकार उत्तराखंड सहकारी संघ में विलय कर दिया गया है क्योंकि व्यापक सिद्धातों के अनुसार जो उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, धारा 54 के अधीन अधिकथित किए गए थे, वास्तव में, इसके अधीन यह माना था कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड से कर्मचारियों का सेवाओं के उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ विलय के परिणामस्वरूप और उस मामले के लिए भी राज्य या किसी अन्य निगम के किसी अन्य कर्मचारी के संबंध में, यह अधिकथित था कि उनकी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप राज्य के विभाजन के परिणामस्वरूप या नए निगम या जैसी भी स्थिति हो, संघ के सृजन के परिणामस्वरूप जब कर्मचारियों की सेवाओं का इस प्रकार विलय होता है, तो यह किसी भी रीति से उनके सेवा लाभों के लिए नुकसानदायक नहीं हो सकता है, जो वे अन्यथा प्राप्त करने के हकदार होते हैं, अगर राज्य का विभाजन तारीख 9 नवंबर, 2000 को प्रभावी पुनर्गठन अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नहीं किया गया होता । संदर्भ के प्रयोजनों के लिए, पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 के अधीन प्रयुक्त भाषा, इस प्रकार उद्धृत किया जाता है :–

> "54. पेंशन .... पेंशन के संबंध में वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य का दायित्व इस अधिनियम की आठवीं अनुसूची में निहित उपबंधों के अनुसार उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल के उत्तराधिकारी राज्यों को दिया जाएगा या उनके मध्य विभाजित किया जाएगा ।"

5. वास्तव में, इसका मूल आशय और उद्देश्य यह था कि राजनीतिक या सांविधानिक संशोधन के कारण 2000 का उ. प्र. पुनर्गठन अधिनियम का प्रवर्तन करना वस्तुतः वे कर्मचारी जो इस प्रकार, दो नव सृजित राज्यों, अर्थात् उत्तराखंड राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य में अपने-अपने कार्य कर रहे थे, उनके हित और परिणामी सेवा लाभों को उन्हें निरन्तर देय बनाना था और इसे बिना किसी नुकसान के संरक्षित किया जाना था । इसके परिणामस्वरूप, इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए विवाद उद्भूत हुआ कि उन कर्मचारियों के संबंध में सेवाओं की शर्तों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जिनकी सेवाएं बाद में उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप उसमें विलय हो गईं और उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ संबंधित सेवाओं के उनके विलय के लाभों का प्रभाव क्या था । **चंद्र मोहन अरोड़ा** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] मामला इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष आया और उक्त विवाद को खण्ड न्यायपीठ के तारीख 29 नवंबर, 2019 के निर्णय द्वारा इस मत द्वारा समाप्त कर दिया गया, जो उक्त निर्णय के पैरा 9, 10 और 11 में किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "9. यद्यपि यह सत्य है कि याची का उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का कर्मचारी होना तारीख 1 जनवरी, 2005 को समाप्त हो गया है, और तारीख 1 जनवरी, 2005 से उसकी अधिवार्षिता लाभों के बकाया का संदाय करने का दायित्व उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ का है, न कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का, याची अपने अधिवार्षिता लाभों की संगणना अंतिम बार उसके द्वारा लिए गए वेतन के आधार पर कराने का हकदार है अर्थात् जो वेतन और भत्ते उसने तारीख 31 दिसंबर, 2014 (अपनी अधिवार्षिता की तारीख) को प्राप्त किया था । इस न्यायालय के उपरोक्त आदेशों में याची के अधिवार्षिता लाभों, जैसे उपदान और अवकाश नकदीकरण की संगणना उसकी अधिवार्षिता की तारीख को की जानी चाहिए, जो वर्तमान मामले में तारीख 31 दिसंबर, 2014 है, और उसके

[1] 2018 की रिट याचिका 448.

अधिवार्षिता लाभों की संगणना पर, उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ, अधिवार्षिता बकाया के अपने आनुपातिक हिस्से का संदाय करने के लिए बाध्य है, जो तारीख 1 जनवरी, 2005 से तारीख 31 दिसंबर, 2014 तक है, इस प्रकार, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को तारीख 31 जनवरी, 1984 से 31 दिसंबर, 2004 अर्थात् 21 वर्षों की अवधि के लिए अधिवार्षिता बकाया का संदाय करना है ।

10. सुविधाजनक रूप से उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को याची की उपदान और छुट्टी नकदीकरण की संगणना तारीख 31 दिसंबर, 2004 को प्राप्त वेतन और भत्तों के आधार पर करनी है, न कि उस वेतन और भत्तों के आधार पर जो तारीख 31 दिसंबर, 2014 को उनकी अधिवार्षिता की पूर्व संध्या पर उन्हें दिया गया था । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा संगणना के इस तरीके को 2015 की विशेष अपील सं. 137 में और बैंच तारीख 3 जुलाई, 2017 में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के निर्णय में त्रुटिपूर्ण बताया गया है । हम उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के विद्वान् स्थायी काउंसेल श्री आशीष जोशी के इस निवेदन से भी प्रभावित नहीं हैं कि उत्तराखण्ड राज्य सहकारी संघ को याची को उक्त संदाय करने का निदेश दिया जाना चाहिए और इसे उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के देय रकम से समायोजित करना चाहिए, जिसमें उसने 2.27 करोड़ रुपए से अधिक का दावा किया है । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का दावा है कि उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ से उन्हें जो रकम देय है, वह केवल सम्यक् रूप से गठित विधिक कार्यवाही में ही वसूल की जा सकती है, न कि किसी कर्मचारी द्वारा अपनी अधिवार्षिता बकाया के संदाय के लिए फाइल रिट याचिका में । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ अपने पहले के कर्मचारियों के दायित्व से यह कहकर बच नहीं सकता है कि उत्तराखण्ड राज्य सहकारी संघ को संदाय करना चाहिए ।

11. हमने ऐसी परिस्थितियों में, इस पर समुचित विचार करते हुए, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को यह निदेश देते हैं कि वह

तारीख 31 जनवरी, 1984 से 31 दिसम्बर, 2014 (वह अवधि जिसमें उसने उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के अधीन कार्य किया) तक की अवधि के लिए याची की सेवानिवृत्ति लाभों की संगणना करें और उसे उसके द्वारा तारीख 31 दिसम्बर, 2014 को आहरित अन्तिम वेतन और भत्ते के आधार पर उक्त अवधि के लिए उपदान और अवकाश नकदी का संदाय करें । याचियों की सेवानिवृत्ति लाभों जैसी पूर्वोक्त निदेशों के निबंधनों में संगणना की गई है, को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर उसे संदत्त किया जाएगा, जो 8 प्रतिशत ब्याज के साथ संदत्त किया जाएगा । यहां यह स्पष्ट करना पर्याप्त होगा कि सेवानिवृत्ति लाभों के मामले में, जैसा 8 प्रतिशत ब्याज के साथ संदत्त करने का निदेश दिया गया है, उसे इसमें उपर्युक्त अनुध्यात अवधि के भीतर संदत्त नहीं किया जाता है तो इसके पश्चात् याची 15 प्रतिशत ब्याज के साथ इन सेवानिवृत्ति लाभों को प्राप्त करने के हकदार होंगे ।"

6. तारीख 29 नवंबर, 2019 के उपरोक्त निर्णय में, विशेष रूप से निर्णय पैरा 11 में उपबंध किया गया है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के लिए एक समुचित निदेश जारी किया गया था जो उन कर्मचारियों के अधिवार्षिता लाभों की संगणना और अवधारण करने के लिए था जो उत्तराखंड सहकारी संघ से अपनी सेवाओं के विलय के बाद सेवानिवृत्त हुए थे और सेवाओं की कुल अवधि, जो उन्होंने उत्तर प्रदेश राज्य में प्रदान की थी जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए और अन्य अधिवार्षिता बकाया के साथ उपदान और छुट्टी नकदीकरण रकम के अवधारण के उद्देश्यों के लिए शामिल किया जाना चाहिए, जो अधिवार्षिता कर्मचारियों को सेवा के उस विशिष्ट कार्यकाल के लिए विधिक रूप से देय था जो उन्होंने उत्तर प्रदेश राज्य में सेवा की थी । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड, जिसे दायित्व के उक्त हिस्से को पूरा करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया था, जो अन्यथा उत्तर प्रदेश के लिए याचियों द्वारा सेवाओं के वितरण के कारण उनके द्वारा वहन किया जाना था । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड, जिसे बाद में, द्वारा संगणना करने के लिए कहा

गया था, विलय किए गए कर्मचारियों को उनकी अधिवार्षिता की आयु प्राप्त होने पर अंतिम वेतन प्रमाण के आधार पर संगणना करना था ।

7. इसी तरह के विवाद पर पहले भी इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ विशेष अपील सं. 137/2015 उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ, लखनऊ और एक अन्य बनाम राजेन्द्र सिंह और अन्य, जो तारीख 3 जुलाई, 2017 के निर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था, यद्यपि उपदान रकम और छुट्टी नकदीकरण और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के संदाय के लिए दायित्व को नियत करने का सिद्धांत, विवाद्यक से थोड़ा विचलन के साथ था । वास्तव में, तारीख 3 जुलाई, 2017 को दिए गए खण्ड न्यायपीठ के निर्णय के सिद्धांत का आधार यह था कि सेवा कार्यकाल के लिए, जो कर्मचारी, जो उत्तराखंड राज्य से अधिवार्षिता को प्राप्त हुए थे, और अंतिम वेतन प्रमाणपत्र उनके पक्ष में उत्तराखण्ड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था । उस स्थिति में, उन विलय किए गए कर्मचारियों के संबंध में उनकी अधिवार्षिता भत्तों का अवधारण, जो उत्तराखण्ड सहकारी संघ से अपनी सेवाओं से सेवानिवृत्त हो चुके हैं, उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा किया जाना था ।

तारीख 3 जुलाई, 2017 के निर्णय का प्रासंगिक पैरा नीचे इस प्रकार उद्धृत किया जाता है :–

> "24. जहां तक तारीख 9 अगस्त, 2012 को समझौता ज्ञापन पर आधारित दलील का संबंध है, यह उस उपदान रकम से संबंधित विवाद्यक से संबंधित है जिस पर अंतिम वेतन की संगणना की जाती है । यह एक ऐसा मामला है जिस पर हम पहले ही निर्णय में चर्चा कर चुके हैं ।
>
> 25. हम अपीलों में कोई बल नहीं पाते हैं और इन्हें तद्द्वारा खारिज किया जाता है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

8. तथापि, तारीख 29 नवंबर, 2019 के निर्णय, जैसा कि इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ में **चंद्र मोहन अरोड़ा** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले को प्रबंध

निदेशक, उत्तर प्रदेश द्वारा चुनौती दी गई थी । सहकारी संघ लखनऊ, **प्रबंध निदेशक**, **पी.सी.एफ.**, **लखनऊ** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ और अन्य**[1], जिसे अंततः माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी तारीख 27 अगस्त, 2020 के अपने निर्णय के माध्यम से खारिज कर दिया था, और इसलिए, दायित्व, जिसे अब तारीख 29 नवंबर, 2019 को खंड न्यायपीठ द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अधिवार्षिता देय रकम के प्रेषण के उद्देश्यों के लिए अवधारित किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया था कि यह उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के सिद्धांतों और नींव पर आधारित है, जैसा कि तारीख 3 जुलाई, 2017 के निर्णय में अवधारित किया गया था, जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर अवधारित किया जाना था, जिसे उत्तर प्रदेश सहकारी संघ में प्रदान की गई सेवाओं के लिए कर्मचारियों की देय रकम के प्रेषण के आधार पर लिया जाना है । इन सभी विवाद्यकों को छोड़ दिया गया है और इस प्रकार, उपरोक्त निर्णय के परिणामस्वरूप, कुछ सिद्धांत, जो पहले ही अभिनिर्धारित किए जा चुके हैं और अब यह अधिनिर्णीत विषय या दलील का आधार नहीं हैं, वे इस प्रकार हैं :–

(i) कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के कर्मचारी याचियों की तरह जो उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड के साथ अपनी सेवा के विलय के परिणामस्वरूप, उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ सेवाओं से विलय से पहले की अवधि के लिए उपदान, छुट्टी नकदीकरण और अन्य अधिवार्षिता लाभों के संदाय के लिए उनका दायित्व, सेवाओं के विलय से पहले की अवधि के लिए उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा वहन किया जाना है ।

(ii) अब यह कोई विवाद का विषय नहीं है, जो किसी मंच पर बहस के अधीन है, कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के कर्मचारियों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की अवधि के लिए जिनकी सेवाओं का बाद में उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय कर

---

[1] 2020 की एस.एल.पी. (सी) सं. 5914.

दिया गया था, उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड के साथ सेवाओं के संबंधित विलय की तारीख से सेवाओं की अवधि के लिए, जब तक कि वे अपनी अधिवार्षिता की आयु प्राप्त नहीं कर लेते, उस भाग के दायित्व को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा उनके अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर पूरा किया जाना है ।

(iii) विशेष अपील सं. 137/2015, तारीख 3 जुलाई, 2017 के निर्णय के आलोक में, विवाद को आगे के लिए छोड़ दिया गया है, यहां तक कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड, जब वे अपने साथ प्रदान की गई सेवा की अवधि के लिए उपदान, छुट्टी नकदीकरण और अन्य अधिवार्षिता लाभों के लिए देय रकम का अवधारण कर रहे हैं, तो उन्हें कर्मचारियों को उनकी अधिवार्षिता की आयु प्राप्त होने पर अंतिम वेतन प्राप्त प्रमाणपत्र के आधार पर इसका अवधारण करना होगा, जो उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया है और इसलिए, उनके अधिवार्षिता लाभ उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ द्वारा अवधारण नहीं किए जाएंगे । अंतिम वेतन के आधार पर उनके अवधारण के आधार पर, जो तब उनके द्वारा उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ उनकी सेवाओं के विलय की तारीख पर निकाला जा रहा था ।

9. एक अभी अन्य निर्णय में, जो **डी. डी. तिवारी** बनाम **उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड और अन्य**[1] में दिया गया था इस अधिवार्षिता लाभ, पेंशन आदि के विलंबित संदाय पर ब्याज की पात्रता के मुद्दे पर व्यापक रूप से चर्चा की थी । विशेष रूप से, उक्त निर्णय के पैरा 5 और 6 का संदर्भ का दिया जा सकता है, जो इसमें उद्धृत किया गया है :–

"5. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्यर्थियों ने गलती से उपदान रकम का संदाय रोक दिया है, जिसके लिए अपीलार्थी उपदान अधिनियम, 1972 के उपबंधों के अधीन उपदान के विलंबित संदाय पर दंडात्मक रकम के संदाय के लिए विधिक

[1] 2014 की सिविल अपील सं. 7113.

रूप से हकदार हैं । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम वर्तमान मामले में ऐसा करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं ।

6. ऊपर उल्लिखित कारणों से, हम वास्तविक संदाय की तारीख तक उपदान की रकम के विलंबित संदाय पर 9% की दर से ब्याज देते हैं । यदि इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तारीख से छह सप्ताह के भीतर इस रकम का संदाय नहीं किया जाता है, तो उस पर मृतक कर्मचारी को देय रकम की तारीख से 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा । उपरोक्त निदेशों के साथ, इस अपील को मंजूर किया जाता है ।"

10. इसमें उन कर्मचारियों के लिए भी ब्याज के संदाय की पात्रता के विवाद्यक पर संक्षिप्त रूप से विचार हो रहा था, जो उपदान संदाय अधिनियम की धारा 7 (3क) के अधीन निहित कानूनी शर्तों के आलोक में अपनी-अपनी सेवाओं से सेवानिवृत्त हुए थे ।

11. पूर्वोक्त व्यापक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जो अब पहले से ही तय हो चुके हैं और इस प्रकार का कोई विवाद नहीं है, जिस पर अब न्यायालय द्वारा चर्चा की जानी बाकी है कि बल्कि यह उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ के विलय किए गए कर्मचारियों को अधिवार्षिता लाभों के अपने हिस्से का संदाय करना होगा, वह भी उत्तरांखड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र पर आधारित होगा, जिसमें सेवाओं की अवधि के लिए देय रकम का अवधारण किया जाएगा, जिसे उन्होंने क्रमश: उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ परिदान किया है, और इसके अलावा, उपदान की रकम और अन्य विधिक रूप से हकदार अधिवार्षिता बकाया के विलंबित संदाय पर, जिसका याची ब्याज प्राप्त करने का हकदार होगा, वे ब्याज का संदाय करने के लिए बाध्य होंगे जैसा कि सिविल याचिका सं. 7113/2014 के निर्णय में अभिकथित किया गया है ।

12. इसमें ऊपर उल्लिखित इन सभी पहलुओं पर आम तौर पर विचार किया जाता है, इसलिए लगभग सभी मामलों को एक साथ निपटाया जा रहा है ।

13. वास्तव में, क्योंकि नीचे सूचीबद्ध प्रत्येक रिट याचिकाओं में, उनके दावे के अवधारण में थोड़ा तथ्यात्मक अंतर होगा, संबंधित संघों के साथ प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के आधार पर, उन्हें प्रत्येक रिट याचिका के संबंध में अलग से निपटाया जाना आवश्यक है ।

14. **माधो सिंह नेगी** बनाम **निबंधक, सहकारी समितियां और अन्य**[1], याची को संबंधित समय पर ड्रग फैक्ट्री, रानीखेत में वर्ग-IV कर्मचारी के रूप में प्रत्यर्थियों के साथ तारीख 1 अप्रैल, 1978 को शामिल किया गया था, और उपदान और छुट्टी नकदीकरण रकम के लिए दावा किया था, साथ ही अन्य अधिवार्षिता देय रकम की संगणना पहले ही प्रत्यर्थी सं. 2 और 3, इसमें अर्थात् उत्तराखंड सहकारी संघ, जिसने तारीख 3 जुलाई, 2015 को अपने पत्र द्वारा इस प्रकार किए गए अवधारण के अनुसार, रिट याचिका यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 ने पहले ही दस वर्ष की अवधि के लिए उपदान रकम का संदाय कर दिया था, जिसकी रकम 1,51,385/- रुपए थी और उन्होंने तारीख 31 जनवरी, 2015 के अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर 61 दिनों के लिए 53,355/- रुपए की छुट्टी नकदीकरण का भी संदाय कर दिया है । यह दलील दी जाती है कि प्रत्यर्थी सं. 6 को तत्काल रिट याचिका में तारीख 31 जनवरी, 2015 को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को एक पत्र जारी किया गया है, तारीख 23 अप्रैल, 1974 से 31 दिसंबर, 2004 तक अपनी सेवाओं की अवधि के लिए याची को उपदान और अन्य अधिवार्षिता देय रकम के प्रेषण के उद्देश्यों के लिए, अर्थात् जिस तारीख को याची की सेवाओं का वास्तव में प्रत्यर्थियों के साथ विलय किया गया था, उत्तराखंड सहकारी संघ लिमिटेड, ने अंतिम वेतन के आधार पर और यह मत व्यक्त किया कि याची 3,37,371/- रुपए प्राप्त करने का हकदार होगा जो उपदान रकम के लिए देय होगा और 1,29,883/- रुपए जो छुट्टी नकदीकरण के लिए संदेय होगा ।

15. उत्तराखंड सहकारी संघ ने दलील दी है कि जहां तक उनके दायित्व का संबंध है, वे पहले ही तारीख 3 जुलाई, 2015 के अपने पत्र

---

[1] 2020 की रिट याचिका सं. 1348.

के माध्यम से याची को अपने दायित्व का संदाय कर चुके हैं लेकिन शेष रकम का संदाय करने के लिए उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का दायित्व है जिसे शेष रकम का संदाय करना है, और दलील दी है कि तारीख 30 मार्च, 2016 के अपने पत्राचार के माध्यम से, उन्होंने उपदान के लिए देय 1,11,921/- रुपए का रकम का संदाय किया है, लेकिन याची की दलील है कि उपदान रकम का उक्त प्रेषण, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ की विशेष अपील 137/2017 में तारीख 3 जुलाई, 2017 के दिए गए निर्णय के अनुरूप नहीं है, क्योंकि उसे अंतिम वेतन के आधार पर प्रेषित नहीं किया गया है और इसलिए, याची ने दलील दी है कि दायित्व के अतिरिक्त जिसे प्रत्यर्थी सं. 6 द्वारा निर्दिष्ट किया गया है तारीख 31 जनवरी, 2015 के अपने पत्राचार में, जो ब्याज रकम के साथ प्रेषण के लिए भी हकदार होगा, जिसे भी अधिसूचना एस.ओ.नं. 873 (ई), 874(ई) के अनुसार देय करने की परिकल्पना की गई है । श्रम मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी तारीख 1 अक्तूबर, 1987 को खंड 7(3ए) के अधीन ब्याज के संदाय को एक अनिवार्य कानूनी ब्याज बनाते हुए, जिसे प्रत्येक कर्मचारी अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने और कानूनी उपदान के विलंबित संदाय के कारण प्राप्त करने का हकदार होगा, इसलिए, याची ने रिट याचिका में अनुरोध किया था कि धारा 7 (3ए) के अधीन देय ब्याज के साथ उपदान और अर्जित अवकाश और अन्य स्वीकार्य बकाया जारी करने के लिए प्रत्यर्थियों को परमादेश आदेश के माध्यम से एक समुचित निदेश भी जारी किया जा सकता है, जो अनुपात के आधार पर है, जिस पर इस न्यायालय द्वारा पहले ही विचार किया जा चुका है, और भारत सरकार की अधिसूचना तारीख 1 अक्तूबर, 1987 ।

16. उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा लिया गया आधार यद्यपि अभिलेख पर कोई प्रति-शपथपत्र फाइल किए बिना, लेकिन उन्होंने तारीख 3 नवंबर, 2021 को एक सारणी पत्र सं. पीसीएफ/प्रशासन/2021-22/485 प्रदान किया है, जिसमें, विशेष रूप से याची के संबंध में, उन्होंने दलील दी है, कि संचार सूचना सं. तारीख 30 मार्च, 2016 को ध्यान में रखते हुए उत्तराखंड सहकारी संघ और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के मध्य 2.27 करोड़ रुपये का समझौता हुआ । रकम याची को प्रेषित नहीं की

जा सकती है । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा लिया गया प्रासंगिक आधार निम्नानुसार है :–

> "5503 तारीख 30 मार्च, 2016 द्वारा पीसीएफ को यूसीएफ द्वारा देय धनरकम 2.27 करोड़ रुपए समायोजित कर संदाय यूसीएफ द्वारा किया गया है ।"

17. **गिरिश चंद्र जोशी** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] याची द्वारा यह दलील दी गई है कि वह प्रत्यर्थी के साथ एक कनिष्ठ सहायक के रूप में कार्य कर रहे थे, और उस समय पर जब उनकी सेवाओं का स्थानांतरण किया गया था और उत्तराखंड सहकारी संघ डब्ल्यू.ई.एफ. के साथ तारीख 7 अक्तूबर, 2002 को विलय किया गया था और 1 अगस्त, 2014 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवाओं से अधिवार्षिता होने के बाद से, तारीख 29 अगस्त, 2014 को उत्तराखंड सहकारी संघ के सक्षम प्राधिकारी द्वारा उनके पक्ष में कनिष्ठ सहायक के रूप में, एक अंतिम वेतन प्रमाणपत्र जारी किया गया था । तारीख 31 अगस्त, 2014 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद, वास्तव में, उत्तराखंड सहकारी संघ ने तारीख 22 नवंबर, 2014 के अपने पत्र के माध्यम से, अन्य बकाया रकम के साथ उपदान और छुट्टी नकदीकरण रकम की संगणना की थी, जो याची को तारीख 23 जून, 1982 से 30 सितंबर, 2002 की अवधि के लिए देय थी, लेकिन उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा याची को इस तथ्य के बावजूद उतनी रकम का संदाय नहीं किया गया है । अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर इस विवाद्यक का निपटारा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ऊपरनिर्दिष्ट निर्णयों के साथ-साथ इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के निर्णयों द्वारा किया गया है ।

18. याची ने दलील दी कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ का संबंध है, उत्तराखंड सहकारी संघ ने तारीख 22 नवंबर, 2014 के अपने पत्र के माध्यम से पहले ही 12 वर्षों की सेवाओं की अवधि के लिए देय उपदान रकम अवधारित कर ली है, जो रकम 2,93,988/- रुपए है और

---

[1] 2020 की रिट याचिका सं. 1453.

155 दिनों की अवधि के लिए छुट्टी नकदीकरण रकम, जो कि तारीख 29 अगस्त, 2014 के अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा याची को पहले ही संदाय कर दी है, लेकिन अब तक तारीख 23 जून, 1982 से उत्तराखंड राज्य में सेवाओं के विलय की तारीख तक, अर्थात् 30 सितंबर, 2002 से सेवाओं की अवधि के लिए शेष रकम अवधारित की गई है, जिसका तारीख 30 सितंबर, 2002 तक भी उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा संदाय नहीं किया गया है । जो याची के दलील के अनुसार जो पहले से ही तारीख 22 नवंबर, 2014 (रिट याचिका के उपबंध-4) के पत्राचार के अनुसार उपदान के लिए 4,89,982/- रुपए और छुट्टी नकदीकरण के लिए 2.05,247/- रुपए की रकम का संदाय करने के लिए अवधारित किया गया है ।

19. उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 13 अप्रैल, 2021 को अपना प्रति-शपथपत्र फाइल किया है, जिसमें उन्होंने दलील दी है कि याची द्वारा लिए गए अंतिम वेतन के आधार पर जैसा कि तारीख 3 सितंबर, 2021 के पत्राचार में दर्शाया है उन्होंने याची की अधिवार्षिता बकाया की संगणना की है और तारीख 4 फरवरी, 2015 के उनके आदेश के अनुसार अंतिम वेतन के उक्त अवधारण के आधार पर इसे अभिकथित रूप से प्रेषित किया गया है, और यह दलील दी है कि इसके परिणामस्वरूप, उपदान के लिए 1,00,846/- रुपए की रकम और 42,243/- रुपए छुट्टी नकदीकरण के लिए पहले ही स्वीकृत किया जा चुका है, लेकिन उक्त रकम को अभिकथित रूप से स्वीकृत की गई विवादित रकम 2.27 करोड़ रुपए के वितरण के अधीन कर दिया गया है । जो उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तराखंड राज्य के दो सहकारी संघों के मध्य विवादित है । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा दलील दी गई है कि दो संघों के सृजन के समय, उनके मध्य तारीख 9 अगस्त, 2012, अर्थात् सचिवों के मध्य, पर एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए थे । दो सहकारी संघों के मध्य और 49 कर्मचारियों की सूची के रूप में, जो उसमें प्रदान की गई थी, इसने उन कर्मचारियों के नाम का खुलासा किया, जिन्होंने अधिवार्षिता की आयु प्राप्त कर ली है । लेकिन, इस मामले में भी, उन्होंने पुनरावृत्ति की है और वही आधार लिया है,

क्योंकि उपदान और छुट्टी नकदीकरण रकम का अवधारण केवल तारीख, 30 सितंबर, 2002 को लिए गए अंतिम वेतन के आधार पर याची को प्रेषित किया जाएगा, जो कि 2015 विशेष अपील सं. 137 तारीख 3 जुलाई, 2017 में दिए गए निर्णय की अवमानना है । तारीख 3 नवंबर, 2021 के सारणीकरण में संदाय न करने का कारण फिर से उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, के अधिकारियों के निर्णयों की अवमानना है, प्रासंगिक भाग इस प्रकार उद्धृत किया गया है :-

> "4954 तारीख 4 फरवरी, 2013 द्वारा पीसीएफ द्वारा देय रकम 2.27 करोड़ रुपए से समायोजित करके संदाय यूसीएफ द्वारा किया जाता है ।"

20. **सरदार सिंह गुसैन** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में यह दलील दी थी कि वह तारीख 19 जनवरी, 1987 से सोयाबीन वनस्पति उद्योग, हल्दूचौड़, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में एक संचालक के रूप में प्रत्यर्थियों के साथ काम कर रहे थे । जो शुरू में अविभाजित राज्य उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय क्षेत्र के भीतर था, लेकिन बाद में उत्तराखंड सहकारी संघ अपने कानूनी अस्तित्व में आया । उन्होंने दलील दी कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी खंड का संबंध है, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने तारीख 1 सितंबर, 2008 के अपने आदेश के अनुसार, ए.सी.पी. लाभ जो याची को क्रमश: 18 और 24 वर्ष की सेवा के संतोषजनक समापन पर देय था, याची को तारीख 31 अगस्त, 2011 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने से पहले ही प्रेषित कर दिए गए थे । याची ने दलील दी कि जब याची द्वारा प्रत्यर्थियों के किए गए कई अनुरोधों और प्रयासों के बावजूद, पूरे अधिवार्षिता लाभों के प्रेषण के उद्देश्यों के लिए, उसे प्रेषित नहीं किया गया था, तो वह पूर्व रिट याचिका फाइल करने के लिए मजबूर था, **सरदार सिंह गुसाई** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सकारी संघ और अन्य**[2], जिसका इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 15 मई, 2013 के अपने निर्णय के

---

[1] 2020 की रिट याचिका सं. 1454.

[2] 2012 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 33.

माध्यम से निपटारा किया था, जिसमें इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने निम्नलिखित निदेश जारी किए थे :–

> न्यायपीठ ने कहा, "तद्नुसार, मैं प्रत्यर्थियों प्राधिकरण को उपदान के बकाया के संदाय, उसके द्वारा लिए गए पिछले वेतन के आधार पर संगणना किए गए अवकाश भत्ते और अन्य अधिवार्षिता के बाद के लाभों के लिए अनुरोध पर निर्णय लेने का निदेश देता हूं, जिसमें याची की सुरक्षा की रकम 18% प्रति वर्ष की दर से संदाय की वास्तविक तिथि तक शामिल है । इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर, यदि आवश्यक हो, तो याची को सुनने के बाद निर्णय लिया जाएगा । रिट याचिका का निपटारा कर दिया जाता है ।"

21. इस समन्वय की न्यायपीठ ने तारीख 5 मई, 2013 के अपने निर्णय के माध्यम से दिए गए उक्त निदेश का पालन नहीं किया गया, तो उन्हें अवमानना याचिका भी फाइल करनी पड़ी, जो कि वर्ष 2014 की अवमानना याचिका सं. 91 थी, लेकिन चूंकि कोई भी तारीख 29 अगस्त, 2019 को अवमानना याचिका को जोर देने के लिए उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए अवमानना याचिका को ही पैरवी न करने पर (या न्यायालय में पेश न होने पर) खारिज कर दिया गया ।

22. याची ने दलील दी है कि तारीख 31 अगस्त, 2011 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद, उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ अन्य विलय किए गए कर्मचारियों के विपरीत, इसमें अधिवार्षिता लाभों का अवधारण किया गया था जो याची को विधिक रूप से देय थे और तद्नुसार, तारीख 3 सितंबर, 2011 को उनके पत्राचार के माध्यम से, उत्तराखंड सहकारी संघ ने संगणना की थी और सात वर्ष की अवधि के लिए उपदान रकम के अपने भाग का संदाय किया था, जो 98,000/- रुपए और 84 दिनों के लिए 84,246/- रुपए की छुट्टी नकदीकरण रकम, और शेष रकम के लिए, उत्तराखंड सहकारी संघ ने अपने तारीख 3 सितंबर, 2011 के पत्र के माध्यम से, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को लिखा था । और 2,52,000/- रुपए की शेष उपदान रकम का संदाय करने का निदेश दिया और 19 जनवरी, 1987 से 31 दिसंबर, 2004

तक छुट्टी नकदीकरण रकम 2,16,634/- रुपए अर्थात् याची द्वारा लिए गए अंतिम वेतन के आधार पर अधिवार्षिता की आयु प्राप्त होने तक अपनी सेवाओं की विलय की तारीख तक प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए देय 4,68,683/- रुपए की कुल रकम ।

23. याची ने दलील दी है कि इस प्रकार उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा संदाय की जाने वाली रकम में से, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 3 सितंबर, 2011 के अपने पत्राचार के माध्यम से, वास्तव में, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 1 नवंबर, 2013 के अपने आदेश के अनुसार उपदान के लिए देय रकम 1,18,000/- रुपए और तारीख 24 दिसंबर, 2013 के अपने आदेश के अनुसार 216 दिनों के लिए छुट्टी नकदीकरण रकम, जो कि 81,878/- रुपए है, को मंजूरी दी है । लेकिन, फिर भी, सुव्यवस्थित विधि के बावजूद, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अभी तक इस अवधि तारीख 19 जनवरी, 1987 से 31 दिसंबर, 2004 को याची की सेवाओं के विलय की तारीख तक, अर्थात् 18 वर्षों अर्थात् 18 वर्षों के लिए उपदान, 2,39,716/- रुपए की रकम और छुट्टी नकदीकरण, 1,66,234/- रुपए इसलिए, मुख्य रूप से याची की दलील है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ अभी भी तारीख 3 सितंबर, 2011 को उत्तराखंड सहकारी संघ के पत्राचार के आधार पर कुल 4,05,994/- रुपए की शेष रकम का संदाय करने के लिए उत्तरदायी है, जिसमें उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने क्रमशः तारीख 1 नवंबर, 2013 और तारीख 24 दिसंबर, 2013 के अपने पत्र के माध्यम से याची की दलील है कि उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों द्वारा अवधारित सिद्धांतों के अनुसार, वह उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा शेष रकम के प्रेषण का भी हकदार होगा । जैसा कि तारीख 31 अगस्त, 2011 को उनकी अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने पर उनके पक्ष में जारी किया गया था ।

24. उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 13 अप्रैल, 2021 की रिट याचिका के लिए प्रति-शपथपत्र फाइल किया था, और उसके प्रयुत्तर में, उन्होंने दलील दी है कि 1,18,094/- रुपए की उपदान रकम का संदाय याची को 2012 रिट याचिका सं. 33 में दिए गए निर्णय के अनुसार

और उसके अनुपालन में किया जाना है । जैसा कि तारीख 15 मई, 2013 को विनिश्चित किया गया था, और उन्होंने दलील दी है कि तारीख 1 नवंबर, 2013 के उनके पत्र के अनुसार, कुल 1,99,972/- रुपए की उपरोक्त रकम का संदाय करने के लिए पहले ही मंजूरी दी जा चुकी है यथा उपर्युक्त तालिका में केवल पत्राचार में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा लिया गया विपरीत आधार तारीख 3 नवंबर, 2021 को न्यायालय का दिया गया है जिसमें याची के संबंध में उन्होंने दलील दी है कि सं. 09355 तारीख 13 दिसंबर, 2013 को याची के पक्ष में 1,18,000/- रुपए की रकम के लिए जारी किया गया है, लेकिन शेष रकम, जिसे तारीख 1 नवंबर, 2013 के पत्राचार में स्वीकृत किया गया था, याची को संदाय किए जाने के लिए प्रतिबिंबित नहीं होती है जैसा कि उनके पत्र सं. 13-14/3139 तारीख 1 नवंबर, 2013 में दिखाया गया है । जिसका प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत है :–

> "3139 तारीख 1 नवंबर 2013 के क्रम में को पीसीएफ द्वारा चैक सं. 009355 दिनांक 13 दिसंबर, 2013 के द्वारा संदाय किया गया ।"

25. **दमयंती हसन** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वास्तव में, रिट याचिका की याची, मृतक कर्मचारी की विधवा है, जो संचालक के रूप में अर्थात् स्वर्गीय श्री डेविड आरिफ हसन नियुक्त था तारीख 6 जुलाई, 1985 को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ में रहते हुए जिनका तारीख 27 अगस्त, 2019 को निधन हो गया था । याची की विधवा द्वारा दलील दी गई कि याची के स्वर्गीय पति, जिन्हें तारीख 6 जुलाई, 1985 को शिफ्ट ऑपरेटर के रूप में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ में नियुक्त किया गया था, और वह अपनी सेवाओं के विलय के बाद तारीख 30 अक्तूबर, 2010 को उत्तराखंड सहकारी संघ की सेवाओं से सेवानिवृत्त हुए थे, और उनके साथ सोयाबीन वनस्पति उद्योग हलदूचौर, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में "प्रभारी" के रूप में काम करने के बाद से और उनकी सेवानिवृत्ति से पहले, अंतिम वेतन

---

[1] 2020 की रिट याचिका सं. 1460.

प्रमाणपत्र जो प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को तारीख 25 नवंबर, 2010 को के पक्ष में जारी किया गया था ।

26. उसने दलील दी कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ का संबंध है याची के स्वर्गीय पति द्वारा तारीख 31 दिसंबर, 2004 से 21 नवंबर, 2010 तक उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ की गई सेवाओं की अवधि को देखते हुए, तारीख 29 नवंबर, 2010 से संबंधित है, उत्तराखंड सहकारी संघ ने पहले ही छह वर्ष की अवधि के लिए उपदान रकम को दे दी थी, जो कि 84,000/- रुपए और 190 दिनों के लिए छुट्टी नकदीकरण थी, जो 87,915/- रुपए अर्थात् तारीख 25 नवंबर, 2010 को उनके स्वर्गीय पति को सम्पूर्ण अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर ऊपर उल्लिखित सेवाओं के लिए उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा पहले ही 1,71,915/- रुपए की कुल रकम का संदाय किया जा चुका है ।

27. याची की दलील यह है कि वर्तमान में वह तारीख 6 जुलाई, 1985 से अपने पति, की प्रारंभिक नियुक्ति की अवधि के लिए शेष रकम के संदाय के लिए अपने दावे का विरोध कर रही है । जब तक उनकी सेवाओं का तारीख 31 दिसंबर, 2004 तक उत्तराखंड सहकारी संघ में विलय नहीं हो गया । 2,66,000/- रुपए उपदान की रकम और सेवा के 210 दिनों के छुट्टी नकदीकरण, कुल 2,05,135/- रुपए की रकम, जो अभी भी याची को अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर किए जाने के अवधारण पर, उस पर कानूनी ब्याज के साथ संदाय किया जाना था ।

28. उसने दलील दी कि कि वह उपरोक्त रकम के प्रेषण पर विचार किए जाने की हकदार होगी, एक निर्णय के आधार पर, जिसे उसने रिट याचिका में निर्दिष्ट किया था, जिसे **डेविड आरिफ हसन** बनाम **उत्तर प्रदेश सहकारी संघ और अन्य**[1] निर्दिष्ट किया जाना था, जिसे पूर्व में याची के स्वर्गीय पति द्वारा फाइल किया गया था, और जैसा कि इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा तारीख 29 मार्च, 2011 को निर्णय लिया गया था, जिसमें समन्वय न्यायपीठ ने अपने निर्णय में, पूर्ववर्ती निर्णयों आनंद स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ

---

[1] 2011 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 210.

और अन्य, तारीख 20 नवंबर, 2006 को 2005 की रिट याचिका सं. 1176 में फाइल, के आधार पर साथ ही तारीख 15 जून, 2007 को खण्ड न्यायपीठ के निर्णय को, **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **आनंद स्वरूप और अन्य**[1] वाले मामले में, प्रत्यर्थियों को निदेश जारी किए थे कि समझौता ज्ञापन के आधार पर, दोनों सहकारी संघों के मध्य निष्कर्ष निकाला जाए, क्योंकि यह समझौता ज्ञापन एकतरफा रूप से रद्द् किया गया है, इसका 2000 के पुनर्गठन अधिनियम की खंड 54 के उपबंधों के आलोक में दोनों सहकारी संघों के सेवानिवृत्त कर्मचारियों को प्रेषित किए जाने वाले लाभों पर कोई असर नहीं पड़ेगा ।

29. याची ने दलील दी की कि जब याची के स्वर्गीय पति द्वारा तारीख 7 मार्च, 2011, 1 अप्रैल, 2011 और 7 जुलाई, 2011 को अभ्यावेदन प्रस्तुत करके किए गए विभिन्न प्रयासों के बावजूद, जब इसके बावजूद रकम उनके हिस्से के संबंध में उत्तर प्रदेश द्वारा प्रेषित नहीं की गई थी । सहकारी संघ, जो माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित सिद्धांतों से बंधा था, साथ ही तारीख 30 जुलाई, 2011 को इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ का निर्णय और उपदान की रकम, छुट्टी नकदीकरण और वेतन बकाया रकम का केवल एक भाग 2,43,973/- रुपए का संदाय किया था, लेकिन शेष रकम, जो उसके स्वर्गीय पति के बकाया के रूप में उसे देय करने के लिए अवधारित की गई थी, तारीख 30 जुलाई, 2011 को उत्तराखंड सहकारी संघ के निर्णय के अनुसार, जिसे उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को निर्दिष्ट किया गया था । तारीख 6 जुलाई, 1985 से 31 दिसंबर, 2004 तक की सेवा अवधि के लिए अभी तक नहीं भेजा गया है । इसलिए, उन्होंने प्रत्यर्थी को देने वाले परमादेश की प्रार्थना के साथ रिट याचिका फाइल की है कि अब से यह कोई विवाद्यक नहीं है जो अनिर्णीत है, याची का दावा है कि याची के स्वर्गीय पति द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ प्रदान की गई सेवाओं के लिए पूरे बकाया का प्रेषण किया जाए । अधिनियम की खंड 7(3क) के अधीन उस देय पर साविधिक ब्याज के साथ उसे प्रेषित करने

[1] 2006 की विशेष अपील सं. 176.

का हकदार है, क्योंकि यह अधिसूचना सं. 873 (ई) और 874 (ई) भारत सरकार द्वारा 1 अक्तूबर, 1987 को जारी की गई है ।

30. प्रत्यर्थी सं. 3 और 4, इसमें अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ यद्यपि तथ्यात्मक रूप से ब्यौरों को स्वीकार किया है, जिस पर पहले ही उपरोक्त चर्चा की जा चुकी है । बल्कि उन्होंने तारीख 25 नवंबर, 2010 को याची के स्वर्गीय पति के पक्ष में जारी किए गए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर, अधिवार्षिता लाभों के संदाय के लिए दायित्व के अपने भाग के निर्वहन के संबंध में एक बहुत ही अस्पष्ट उत्तर दिया है । यद्यपि प्रत्यर्थियों द्वारा प्रदान की गई सारणीकरण अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ तारीख 3 नवंबर, 2021 को न्यायालय कार्यवाहियों के दौरान का पत्र सं. पीसीएफ/प्रश्न/2021-22/4851 में उन्होंने दलील दी कि कुल उपदान रकम 1,24,184/- रुपए और उस पर संदेय ब्याज 10,000/- रुपए पहले ही चैक सं. 647765 तारीख 19 जुलाई, 2011 द्वारा याची को प्रेषित किए जा चुके हैं । लेकिन प्रति-शपथपत्र या तारीख 3 नवंबर, 2021 का पत्राचार, जैसा कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा फाइल किया गया है । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के उनके प्रदान की सेवाएं याची के स्वर्गीय पति द्वारा गई सेवाओं की अवधि के लिए अधिवार्षिता बकाया की शेष रकम के प्रेषण के लिए अपने दायित्व के संबंध में चुप है ।

31. **घनश्याम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में याची ने यह दलील दी थी कि अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद, उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ काम करने के बाद, तारीख 31 जनवरी, 2011 को सेवाओं से सेवानिवृत्त होने के बाद, जब याची द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों के बावजूद उन्हें उपदान रकम, छुट्टी नकदीकरण और अन्य अधिवार्षिता लाभों का संदाय नहीं किया गया था, तो 2011 की रिट याचिका सं. 435 को उन्होंने प्राथमिकता दी थी, जो रिट याचिका थी । **घनश्याम सिंह और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य** (उपर्युक्त)

---

[1] 2020 की रिट याचिका सं. 1854.

जिसे इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 13 मई, 2011 के निर्णय द्वारा निम्नलिखित निदेशों के साथ निपटाया था :–

> "........श्री आशीष जोशी, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड के उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने यह स्वीकृत किया है कि यह मामला उपरोक्त रिट याचिका में तारीख 29 सितंबर, 2011 को पारित निर्णय द्वारा पूरी तरह से समावेषित किया गया है ।
>
> इसलिए, इस रिट याचिका का इस न्यायालय द्वारा 2011 की रिट याचिका सं. 210 (एस/एस) डेविड आरिफ **बनाम** उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य वाले मामले में तारीख 29 मार्च, 2011 को पारित आदेश के निबंधनों में निपटारा भी किया गया है ।"

32. याची ने दलील दी है कि इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्णय के बावजूद, जो तारीख 29 मार्च, 2011 को पूर्ववर्ती समन्वय न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णयों पर आधारित था, जब निर्णय और 2014 की रिट याचिका सं. 738, राजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ और अन्य वाले मामले में दिए गए समन्वय न्यायपीठ के आदेश, जैसा कि तारीख 24 मार्च, 2017 को निर्णय लिया गया था, याची के पास उसे देय सेवानिवृत्ति लाभों की रकम के प्रेषण के लिए विद्यमान रिट याचिका फाइल करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं था ।

33. याची ने दलील दी कि जनवरी, 2011 के मास में हेड फिटर के पद से सेवानिवृत्ति होने के बाद, लेकिन चूंकि उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप, तारीख 31 जनवरी, 2011 को उत्तराखंड सहकारी संघ ने तारीख 21 जनवरी, 2011 के पत्र सं. सोया/वैन/लेखा/2010-11 द्वारा सेवानिवृत्ति लाभों के अवधारण के प्रयोजनों के लिए याची द्वारा प्राप्त वेतन को प्रमाणित करते हुए एक अंतिम संदाय प्रमाणपत्र जारी किया था । उसने दलील दी कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ का संबंध है, उत्तराखंड सहकारी संघ ने संगणना की और अपने पत्र सं. 5768-73/यू.सी.एफ./स्थापना/2010-11, तारीख 3

फरवरी, 2011 द्वारा छह वर्ष की अवधि के लिए उपदान की रकम के भाग और 127 दिनों की अर्जित अवकाश रकम अवधि के लिए रकम को संदत्त किया है । इसके परिणामस्वरूप, उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा क्रमश: 8,84,000/- रुपए और 1,27,800/- रुपए की रकम, कुल 2,11,800/- रुपए का पहले ही संदाय किया जा चुका है । विवाद यह है कि जिसका अब याची द्वारा विरोध किए जाने का समर्थन किया जाना चाहिए, वह यह कि उत्तराखंड सहकारी संघ ने अपने तारीख 3 फरवरी, 2011 को एक पत्र 5768-73/यूसीएफ ने उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को लिखा था कि उपदान शेष रकम, अर्थात् 19 वर्षों की सेवा अवधि के लिए 1,74,090/- रुपए है, उस पर देय ब्याज के साथ 4,40,090/- रुपए का अभी भी उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा संदाय किया जाना है । लेकिन चूंकि इसे प्रेषित नहीं किया गया है, इसलिए उन्होंने इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के आधार पर कानूनी सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण के लिए वर्तमान रिट याचिका को प्राथमिकता दी थी ।

34. लेकिन जब याची द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी संघ से बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद, जब तारीख 2 अक्तूबर, 2020 को उनके आवेदन पर कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ, तो याची ने रिट याचिका को फाइल किया है, जिसमें दलील देते हुए कि निर्णय के मुख्य भाग में पहले से ही उल्लिखित विभिन्न निर्णयों द्वारा अधिकथित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश सहकारी संघ सेवानिवृत्ति लाभों की शेष रकम का संदाय करने के लिए दायी होगा जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा किए गए पत्राचार के अनुसार संदत्त किए जाने के लिए निर्दिष्ट किया गया है ।

35. वर्तमान रिट याचिका में याची द्वारा किए गए अनुतोष और दलील के उत्तर में, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 इसमें अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के काउंसेल ने तारीख 13 अप्रैल, 2021 को प्रति-शपथपत्र के माध्यम से अपना उत्तर फाइल किया है, जिसमें प्रबंध निदेशक द्वारा लिखे गए तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के पत्र को ध्यान में रखते हुए, उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 13 जून, 2011 को अपने

निर्णय में लिए गए निर्णय और 2011 की रिट याचिका सं. 210 तारीख 29 मार्च, 2011 में लिए गए निर्णय का हवाला दिया गया है । उसमें निर्दिष्ट रकम में से कुछ रकम याची को पहले संदत्त की जा चूकी है, जो तारीख 31 जनवरी, 2011 को हेड फिटर की सेवा से सेवानिवृत्ति हुए थे । तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के पत्र में, वास्तव में, यदि उक्त पत्र की जांच की जाती है तो प्रत्यर्थियों ने केवल 1,27,461/- रुपए की रकम और छुट्टी नकदीकरण की 67,055/- रुपए का संदाय अनुमोदित किया था लेकिन तारीख 7 अक्तूबर, 2021 के उक्त पत्राचार के समापन भाग में, यह मत व्यक्त किया कि उक्त रकम का प्रेषण यद्‌यपि इस प्रकार कार्यालय से अनुमोदित दिखाया गया था लेकिन इसे मुख्यालय द्‌वारा अनुमोदन किए जाने के बाद ही देय किया जाएगा, जिसका अर्थ है, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 भी, ऐसी कोई रकम, जो तारीख 7 अक्तूबर, 2011 को स्वीकृत दिखाई गई थी, आज तक याची को संदाय नहीं की गई, क्योंकि यह प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के मुख्यालय द्‌वारा दी जाने वाली मंजूरी के अध्ययधीन की गई थी । इस प्रकार प्रति-शपथपत्र में अभिवाक् करना और कुछ नहीं बल्कि एक धोखा और अवमानना भी थी ।

36. उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 13 अप्रैल, 2021 को एक प्रति-शपथपत्र फाइल किया था, जिसमें उन्होंने हवाला दिया है कि तारीख 2011 की रिट याचिका सं. 435 में यथा प्रतिपादित तारीख 13 मई, 2011 के निर्णय के परिणामस्वरूप, याची को उनके तारीख 7 अक्तूबर, 2011 के पत्र के माध्यम से सेवानिवृत्ति लाभों का संदाय किया गया है, जिसे प्रति-शपथपत्र के साथ उपाबद्ध किया गया है, लेकिन फिर भी, उक्त पत्राचार में बहुत चतुराई से, यद्‌यपि प्रत्यर्थियों ने उपदान रकम और छुट्टी नकदीकरण रकम के साथ-साथ अन्य बकाया रकम की मंजूरी का हवाला दिया है, जिसका उसमें ब्यौरा दिया गया है, लेकिन उन्होंने दलील दी है कि उक्त रकम केवल याची को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के मुख्यालय द्‌वारा दी जा रही मंजूरी के अनुमोदन के अध्ययधीन देय हागी । लेकिन पत्र सं. पीसीएफ/प्रशासन/2021-22/4851 तारीख 3 नवंबर, 2021 के नाते उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्‌वारा न्यायालय को प्रदान किए गए विवरणों में उनके द्‌वारा लिए गए विपरीत आधार पर, याची के संबंध में

तारीख 7 अक्तूबर, 2021 के पत्र का हवाला देते हुए, उन्होंने यह दलील दी है कि 1,27,461/- रुपए के साथ 10,000/- रुपए ब्याज की रकम याची को चैक सं. 228358, तारीख 5 अक्तूबर, 2011 के माध्यम से संदत्त की गई है, लेकिन न्यायालय को या प्रति-शपथपत्र में ब्यौरे दिए गए, वे शेष रकम के वास्तविक प्रेषण के संबंध में संपूर्ण रूप से शांत हैं जिसे याची उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए प्राप्त करने का हकदार हो गया होता ।

37. **चंडी प्रसाद रतुरी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में, यह मुकदमे का दूसरा दौर है, इससे पहले, याची ने 2014 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 1809 जिसे इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 7 नवंबर, 2014 के अपने निर्णय के माध्यम से निम्नलिखित निदेशों के साथ निपटारा किया था :–

> "2. तथापि, इस विवाद का निर्णय इस न्यायालय की न्यायपीठ द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य **बनाम** उत्तरांचल राज्य सहकारी विपरण संघ लिमिटेड और अन्य (2009 एस.पी.ए. सं. 229 तारीख 14.5.2010 को विनिश्चित) वाले मामले में पहले ही किया जा चुका है जो इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय पर आधारित था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तारीख 31 दिसंबर, 2004 तक के सभी बकाया का संदाय करना उत्तर प्रदेश राज्य संघ लिमिटेड का दायित्व है और उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड पर तारीख 1 जनवरी, 2005 से शुरू होने वाले बकाया का संदाय करने का दायित्व है ।
>
> 3. उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड के काउंसेलों के अनुसार, याची को इन बकाया का संदेय पहले ही किया जा चुका है लेकिन तारीख 31 दिसंबर, 2004 तक उत्तर प्रदेश राज्य संघ लिमिटेड द्वारा याची को संदाय नहीं किया गया है ।
>
> 4. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेलों ने न्यायालय में अभिकथन किया कि वर्तमान मामला उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और

[1] 2020 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 1902.

एक अन्य **बनाम** उत्तरांचल राज्य सहकारी विपणन संघ लिमिटेड और अन्य (2009 की एस.पी.ए. सं. 229 तारीख 14.5.2010 को विनिश्चित) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा पूरी तरह से समावेषित किया गया है ।

5. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका का उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य **बनाम** उत्तरांचल राज्य सहकारी विपणन संघ लिमिटेड और अन्य (2009 की एस.पी.ए. सं. 229 तारीख 14.5.2010 को विनिश्चित) वाले मामले में पारित पूर्वोक्त निर्णय के निबंधनों में निपटारा किया जाता है ।

6. यह स्पष्ट किया जाता है कि याची के सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की संगणना करते समय, याची द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन को ध्यान में रखा जाएगा ।"

38. तथ्य ये हैं कि इस रिट याचिका में याची ने उपदान, अर्जित अवकाश और अन्य अनुज्ञेय बकाया का संदाय न करने के लिए अपनी शिकायत के निवारण के लिए दूसरी बार रिट न्यायालय को समावेदन किया था, जिसमें उनके अनुसार, उसने दलील दी कि वह तारीख 31 जनवरी, 2013 को सेवाओं से सेवानिवृत्ति की अधिवार्षिता आयु होने के बाद, तारीख 27 जुलाई, 1984 से तारीख 31 दिसंबर, 2004 तक की अवधि के लिए एक स्टोर कीपर के रूप में प्राप्त करने के हकदार थे, जब उनकी सेवाओं को उत्तराखंड सहकारी संघ में विलय कर दिया गया था ।

39. याची की दलील थी कि उन्हें आरंभ में तारीख 21 जुलाई, 1984 को तत्कालीन उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ सोयाबीन एवं वनस्पति इंडस्ट्रीज, हलदूचौर, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के अधिग्रहण के परिणामस्वरूप, उत्तराखंड सहकारी संघ अस्तित्व में आया, और परिणामस्वरूप उनकी सेवाओं का उत्तराखंड सहकारी संघ में तारीख 1 जनवरी, 2005 से विलय हो गया । उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ उनकी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप, उन्हें तारीख 16 फरवरी, 2008 के एक आदेश द्वारा क्रमशः 18 और 24 वर्ष

की सेवा पूरी करने पर प्रथम और द्वितीय ए.सी.पी. का लाभ प्रदान किया गया था । उन्होंने आगे दलील दी कि उत्तराखंड सहकारी संघ अपने पत्र सं. 9860-65/यू.सी.एफ./स्था./2012-13, तारीख 16 मार्च, 2013 द्वारा तारीख 31 जनवरी, 2013 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने से पूर्व, वस्तुतः, उपदान और अर्जित छुट्टी जिसे तारीख 1 जनवरी, 2005 से तारीख 31 जनवरी, 2013 तक की अवधि के लिए उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ उनके द्वारा की गई सेवा के प्रयोजनार्थ याची को संदेय करनी थी और इसके परिणामस्वरूप, एक वर्ष की अवधि के लिए उपदान की रकम 23,270/- रुपए संदेय किए जाने के लिए निर्धारित की गई थी और 20 दिनों की छुट्टी नकदीकरण की रकम 26,889/- रुपए निर्धारित की गई थी जिसको उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा तारीख 1 जनवरी, 2005 से तारीख 31 जनवरी, 2013 तक की पूर्वोक्त अवधि के लिए पहले ही प्रेषित किया जा चुका है ।

40. उसने आगे दलील दी कि तारीख 16 मार्च, 2013 का पूर्वोक्त पत्राचार भी उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को निर्दिष्ट किया था, जिसके द्वारा, तारीख 1 नवंबर, 2014 को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा याची के पक्ष में जारी किया गया अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को तारीख 21 जुलाई, 1984 से 31 दिसंबर 2004, तक अर्थात् उनकी सेवाओं के विलय से पूर्व सेवाओं की अवधि के लिए 4,65,392/- रुपए की उपदान रकम और 2,27,215/- रुपए अर्जित छुट्टी की रकम का संदाय करने के लिए दायी बनाया गया था ।

41. याची ने दलील दी कि तारीख 21 फरवरी, 2015 को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, यद्यपि 2,15,329/- रुपए की उपदान रकम को मंजूरी दे दी थी, लेकिन इसकी संगणना अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर नहीं की गई थी, जो तारीख 1 नवंबर, 2014 को उसके पक्ष में उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था, और इसलिए, उसने दलील दी कि वह 7,24,821/- रुपए की सेवानिवृत्ति बकाया रकम प्राप्त करने के हकदार होंगें, क्योंकि इसका तारीख 26 सितंबर, 2013 के अपने पत्राचार में उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी

संघ को एक रकम के रूप में निर्धारण की जानी थी, जो याची को देय थी ।

42. रिट याचिका का प्रत्यर्थी सं. 1 और 2, अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने विरोध किया था और इसके प्रत्युत्तर में, प्रति-शपथपत्र में, उन्होंने 21 फरवरी, 2015 को किए गए सेवानिवृत्ति लाभों की मंजूरी का हवाला दिया, जिसके लिए याची द्वारा असंतोष अभिलिखित किया गया है, क्योंकि यह अंतिम वेतन प्रमाणपत्र पर आधारित नहीं है, इसके अलावा, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने तारीख 9 फरवरी, 2005 के समझौता ज्ञापन का भी हवाला दिया है, जैसा कि पुनर्गठन अधिनियम की धारा 48, 59 और 60 के अधीन अंतर्वलित उपबंधों के अनुसार दोनों सहकारी संघों के मध्य हुआ था, जिसे बाद में वापस ले लिया गया था, लेकिन तथापि, कर्मचारियों की सूची में, जिनकी सेवाओं को उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय कर दिया गया था, याची का नाम उक्त सूची के क्र. सं. 9 पर रखा गया ।

43. वर्तमान रिट याचिका की कार्यवाही के दौरान, यद्यपि तारीख 13 अप्रैल, 2021 को अपना प्रति-शपथपत्र फाइल करने के बाद, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 3 नवंबर, 2021 को एक सारणी पत्र का प्रदाय किया था, जिसमें, अपने अंतिम स्तंभ में, उन्होंने उपदान की रकम और छुट्टी के नकदीकरण में अपनी असमर्थता के कारण बताए हैं और याची के मामले में, रकम का संदाय करने में उनकी असमर्थता के कारण के रूप में निम्नलिखित हवाला दिया गया है, जो इसमें इस प्रकार उद्धृत है :-

> "4815 तारीख 21 फरवरी, 2015 द्वारा पी.सी.एफ. को यू.सी.एफ. द्वारा देय धन रकम 2.27 करोड़ रुपए से समायोजित करके संदाय यू.सी.एफ. द्वारा किया गया है ।"

44. **अजीत सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में, उपदान और सेवानिवृत्ति लाभों के संदाय के लिए याची के आदेश पर मुकदमे का दूसरा चरण है, जिससे वह उत्तर

---

[1] 2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 369.

प्रदेश सहकारी संघ के भाग पर निष्क्रियता के कारण प्रेषित किए जाने से वंचित था । प्रथम दृष्टांत पर, **अजीत सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य**[1] के नाते रिट याचिका फाइल करके रिट न्यायालय को समावेदन किया था, जिसका निम्नलिखित निदेशों के साथ तारीख 29 मार्च, 2011 के निर्णय द्वारा इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा निपटारा किया गया था :–

"आज उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री जोशी द्वारा एक प्रति-शपथपत्र फाइल किया गया है, जिसे अभिलेख में लिया है । प्रति-शपथपत्र में, वर्तमान मामले और पूर्व के मामलों के मध्य अंतर उत्पन्न करने का एकमात्र आधार यह है कि प्रत्यर्थियों के अनुसार पूर्व के मामलों का निर्णय उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ और उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ के मध्य तारीख 6 नवंबर, 2004 के समझौता ज्ञापन के आधार पर किया गया था, जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ द्वारा देय रकम दी जानी है । एकतरफा रूप से सभी समान 'उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ ने अब तारीख 10 नवंबर, 2010 के आदेश के माध्यम से इस समझौता ज्ञापन को रद्द कर दिया है और चूंकि समझौता ज्ञापन 10 नवंबर, 2010 को रद्द कर दिया गया था और याची तारीख 31 जनवरी, 2011 को सेवानिवृत्त हो गया था, इसलिए यह लाभ याची को नहीं दिया जा सकता है । संक्षेप में यह अब श्री जोशी की दलील है । प्रत्यर्थी के लिए विद्वान् काउंसेल की यह दलील पूर्णत: गलत है क्योंकि उक्त समझौता ज्ञापन पर इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के साथ-साथ इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया है और कर्मचारियों को मिलने वाले लाभ उन्हें मंजूर किए गए हैं । यह उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ' के लिए स्वतंत्र नहीं है ।"

"एक एम.ओ.यू. को एकतरफा रूप से रद्द करने के लिए, केवल इसलिए कि एम.ओ.यू. रद्द कर दिया गया है,

[1] 2011 की रिट याचिका सं. 212.

इससे मामले में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि विद्वान् एकल न्यायाधीश के साथ-साथ इस न्यायालय की खण्ड पीठ दोनों ने पूर्ववर्ती आदेशों के आधार पर बनाया है । उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ ने इस न्यायालय के न्यायिक आदेशों को नाकाम करने के लिए विशुद्ध स्पष्ट रूप से केवल एकतरफा उक्त एम.ओ.यू. (जो किसी भी दशा में नहीं कर सकते) को वापिस ले लिया । इसलिए यह मामला किसी भी तरह से पूर्ववर्ती मामलों से भिन्न नहीं है, जहां समान रूप से रखे गए व्यक्तियों के पक्ष में आदेश पारित किया गया है । इसलिए रिट याचिका का 2005 की रिट याचिका सं. 1176 (एस/एस) आनंद स्वरूप **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ और अन्य वाले मामले में तारीख 20 नवंबर, 2006 को पारित आदेश के साथ-साथ 2006 की विशेष अपील सं. 176 उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और एक अन्य **बनाम** आनंद स्वरूप और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ द्वारा तारीख 15 जून, 2007 को पारित आदेश के निबंधनों में निपटान किया जाता है ।”

45. निर्णय की निबंधनों के अनुसार, जिसे तारीख 29 मार्च, 2011 को विनिश्चित किया था, समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 20 नवंबर, 2006 के निर्णय के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभों की रकम के प्रेषण का निदेश दिया है, जिसे **आनंद स्वरूप** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ और अन्य**[1] वाले मामले में प्रतिपादित किया था, जिसकी बाद में खण्ड न्यायपीठ ने तारीख 15 जून, 2007 के स्वयं के निर्णय की अभिपुष्टि की थी, जैसा कि 2006 की विशेष अपील सं. 176 में प्रतिपादित था । तारीख 29 मार्च, 2011 के निर्णय के बाद, याची ने तारीख 29 मार्च, 2011 के निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण के लिए तारीख 11 अप्रैल, 2011 को एक बार फिर उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के समक्ष अपनी शिकायतों को फाइल किया था ।

---

[1] 2005 की पूर्ववर्ती रिट याचिका (एस/एस) सं. 1176.

46. याची द्वारा तारीख 11 अप्रैल, 2021 के अपने अभ्यावेदन के माध्यम से किए गए पत्राचार के उत्तर में, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 30 जुलाई, 2011 के अपने पत्र सं. पी.सी.एफ./लेखा/2011-12/49917 के द्वारा याची को उपदान रकम के रूप में 1,67,128/- रुपए, अर्जित छुट्टी के लिए 74,491 रुपए, 31,665/- रुपए पांचवा वेतन का बकाया और 10,000/- रुपए ब्याज का भाग संदाय किया था, लेकिन चूंकि तारीख 30 जुलाई, 2011 के पत्राचार के माध्यम से उक्त रकम उत्तर प्रदेश द्वारा सहकारी संघ को प्रेषित की गई थी । अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर नहीं था, जैसा कि तारीख 18 जनवरी, 2012 के आदेश सं. 4959-62/यू.सी.एफ. उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा उनके पक्ष में जारी किया गया था, याची उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को अर्थात् पुनर्गठन अधिनियम का आदेश 54 के अधीन संरक्षित ब्याज के अनुसार एक समुचित निदेश देने की ईप्सा करते हुए 2021 की रिट याचिका सं. 369(एस/एस) की बाबत वर्तमान रिट याचिका को प्राथमिकता देनी थी, वह तारीख 20 मई, 1977 से 31 दिसंबर, 2005 तक की अवधि के लिए उपदान और अर्जित अवकाश सहित सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण पाने का हकदार होगा, जब वह आरंभ में जिला कार्यालय हल्द्वानी, जिला नैनीताल में एक कनिष्ठ सहायक के रूप में शामिल किया गया था, और बाद में, जब उनकी सेवाओं को तारीख 1 जनवरी, 2005 से उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय कर दिया गया था ।

47. उसने दलील दी कि तारीख 31 जनवरी, 2011 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद और तारीख 3 फरवरी, 2011 के अपने पत्राचार के माध्यम से उत्तराखंड सहकारी संघ से एक कनिष्ठ सहायक के रूप में सेवानिवृत्त होते हुए, पत्र सं. 5762-67/यू.सी.एफ./2010-11 के द्वारा दायित्व के अपने भाग से परेशान था, जिसके द्वारा 6 वर्षों के लिए उपदान की रकम 61,765/- रुपए और 84 दिनों के लिए अर्जित अवकाश रकम 78,764/- रुपए याची को तारीख 18 जनवरी, 2012 के अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर प्रेषित किया था, जिसे याची द्वारा प्राप्त अंतिम वेतन को प्रमाणित करते हुए उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था ।

48. रिट याचिका में याची ने दलील दी थी कि तारीख 3 फरवरी, 2011 के पत्राचार के बावजूद, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा, चूंकि तारीख 30 मई, 1977 से तारीख 31 दिसंबर, 2004 की अवधि के लिए उपदान और अर्जित अवकाश की रकम का अंतिम वेतन के आधार पर संदाय नहीं किया गया था, जैसा कि उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा प्रमाणित किया गया था, याची के लिए रिट याचिका को प्राथमिकता देने की आवश्यकता उत्पन्न हुई, जब तारीख 6 नवंबर, 2020 का उसका अभ्यावेदन अनुत्तरित रहा ।

49. नोटिस जारी करने पर, इसमें प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 ने अपने प्रति-शपथपत्र फाइल किए हैं, जिसमें उत्तराखंड सहकारी संघ ने दलील दी है कि उन्होंने विभाग द्वारा जारी किए गए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के अनुसार और जैसा कि ऊपर विस्तृत है, दायित्व के अपने भाग का निर्वहन किया है और इसलिए, याची द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के साथ की गई सेवाओं की अवधि के लिए सेवानिवृत्ति लाभों की रकम के संदाय के लिए अब उन पर कोई दायित्व नहीं बचा है ।

50. उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 13 अप्रैल, 2021 को कोई विशिष्ट कारण या विवरण दिए बिना एक बहुत ही अस्पष्ट और टालमटोल करने वाला प्रति-शपथपत्र फाइल किया था, कि तारीख 30 मई, 1977 से तारीख 31 दिसंबर, 2004 की अवधि के लिए सेवानिवृत्ति लाभ याची को याची के पक्ष में उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर क्यों नहीं भेजे जा रहे थे । इस मामले में भी, जब रिट याचिका पर दलील दी जा रही थी, तो उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 3 नवंबर, 2021 को एक सारणीकरण चार्ट प्रदान किया था, जिसमें उनकी असमर्थता का विवरण दिया गया था, जिसमें उन्होंने अपनी सद्भाविकता दिखाने के लिए दोहराया है कि उन्होंने तारीख 4 जुलाई, 2011 को एक 10,000/- रुपए ब्याज के सहित 1,67,128 रुपए की रकम के लिए एक चैक जिसकी चैक सं 647764 तारीख 19 जुलाई, 2011 को जारी किया है, लेकिन याची की शिकायत यह है कि यह रकम, जिसका सारणी शीट में ब्यौरा दिया गया है, जिसे याची को अधिकथित रूप से संदाय किया गया है, क्योंकि यह

अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के मूल के अनुरूप नहीं है, इसे कायम नहीं रखा जा सकता है । सारणीकरण का प्रासंगिक भाग इसमें नीचे इस प्रकार उद्धृत है :–

> "7829 तारीख 4 जुलाई, 2011 के क्रम में पी.सी.एफ. द्वारा चैक सं. 647767 तारीख 19 जुलाई, 2011 द्वारा किया गया ।"

51. **ओम प्रकाश** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में याची ने यह मामला उठाया है कि उसे तारीख 12 दिसंबर, 1985 के नियुक्ति पत्र के अनुसार प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ नियुक्त किया गया था, इसके परिणामस्वरूप, उसने तारीख 25 जनवरी, 1986 को एक शिफ्ट ऑपरेटर के रूप में अपनी सेवाओं का पदभार ग्रहण किया और उसने उक्त क्षमता में तब तक काम किया जब तक कि उनकी सेवाओं को तारीख 1 जनवरी, 2005 को उत्तराखंड सहकारी संघ में विलय नहीं कर दिया गया और उसने सहकारी औषधि कारखाना रानीखेत, जिला अल्मोड़ा में शिफ्ट ऑपरेटर के रूप में काम किया, उक्त क्षमता में प्रत्यर्थियों के साथ काम करते हुए, वह तारीख 31 जुलाई, 2015 को अपनी अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करके सेवानिवृत्त हुए थे ।

52. याची ने रिट याचिका में यह मामला उठाया है कि अधिवार्षिता की आयु प्राप्त होने पर, जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ का संबंध है, उन्होंने अपने पत्र सं. 1122-26/पी.सी.एफ./2015-15 तारीख 29 जुलाई, 2015 के साथ-साथ तारीख 27 फरवरी, 2016 के पत्र सं. 3446-50/पी.सी.एफ./2015-16 ने पहले ही 11 वर्षों की सेवाओं की अवधि के लिए उपदान रकम 3,15,785/- रुपए और 120 दिनों के लिए अर्जित छुट्टी की रकम 1,99,040/- रुपए की मंजूरी दे दी थी, इसका अभिप्रेत है कि उत्तराखंड सहकारी संघ ने पहले ही पुनर्गठन अधिनियम के खंड 54 के अधीन अपने भाग के दायित्व को पहले ही 5,14,825/- रुपए प्रेषित कर दिए हैं । वास्तव में, तारीख 27 फरवरी, 2016 के पूर्वोक्त पत्राचार जबकि याची को उपदान और अर्जित अवकाश की उपरोक्त रकम को

---

[1] 2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 374.

मंजूरी देते हुए, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को उत्तराखंड सहकारी संघ ने उपरोक्त पत्र को भी प्रेषित किया था जिसके द्वारा 19 वर्षों के लिए उपदान की कुल रकम का अवधारण करते हुए, जिसे 5,45,446/- रुपए निर्धारित किया और 180 दिनों की अर्जित छुट्टी सेवाओं की अवधि के लिए 2,98,560/- रुपए निर्धारित की जानी थी, जो याची ने तारीख 25 जनवरी, 1986 से अधिवार्षिता तारीख 31 जुलाई, 2015 अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने तक कुल 8,44,006/- रुपए याची को अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर संदाय किए जाने की सिफारिश की गई थी जो उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा तारीख 21 सितंबर, 2020 को पत्र सं. सी.डी.एफ./ए.सी.डी.एफ./2020-21, तारीख 21 सितंबर, 2020 के माध्यम से जारी किया था ।

53. याची ने आगे यह भी मामला उठाया है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 21 जून, 2016 को सेवानिवृत्ति लाभ का एक भाग कुल रकम 1,97,228/- रुपए चैक सं. 48906 तारीख 20 दिसंबर, 2016 के माध्यम से प्रेषित किया था लेकिन उनके द्वारा रकम का उक्त प्रेषण अंतिम वेतन पर आधारित नहीं था, और इसलिए, याची ने तारीख 5 अक्तूबर, 2017 को एक अभ्यावेदन फाइल किया था, जिसमें दलील दी गई थी कि याची के साथ 2017 की रिट याचिका सं. 3305 में इस न्यायालय द्वारा तारीख 28 जून, 2021 के निर्णय के अनुसार समान व्यवहार किया जाना चाहिए था, लेकिन जब याची की अपेक्षा के अनुसार उद्भूत दावे के बावजूद कुल रकम संदाय नहीं किया गया था, तो उसने यह रिट याचिका फाइल की थी, जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा एक प्रति-शपथपत्र फाइल करके चुनौती दी गई थी और जिसे प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 ने विशिष्ट रूप से, प्रति-शपथपत्र फाइल किया था । उन्होंने याची द्वारा लिए गए अंतिम वेतन के आधार पर उपरोक्त विस्तृत सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण से संबंधित आधार की पुनरावृत्ति की है । लेकिन, जहां तक उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का संबंध है, उन्होंने भी तारीख 9 अगस्त, 2012 को पुनर्गठन अधिनियम की धारा 48, 59 और 60 के अधीन अंतर्वलित उपबंधों के अनुसार हुए समझौता ज्ञापन का हवाला देते हुए यह दलील दी कि यद्यपि याची का नाम क्रम सं. 48 के स्थान पर

समझौता ज्ञापन में शामिल कर्मचारियों की सूची में पाया गया था, लेकिन फिर भी रकम प्रेषित नहीं की गई थी, इसलिए याची ने इस रिट याचिका को यह दलील देते हुए फाइल किया है कि वह उस रकम का हकदार होगा जिसकी सिफारिश तारीख 21 सितंबर, 2020 को उनके पक्ष में जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा तारीख 27 फरवरी, 2016 को की गई थी ।

54. इस रिट याचिका में भी सुनवाई के दौरान, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने इस प्रकार तारीख 3 नवंबर, 2021 को प्रदान की गई सारणी में एक बार फिर रकम का प्रेषण न करने का कारण बताया है, जैसा कि उक्त सारणी के अंतिम कॉलम में दिया गया है, जो इसके अधीन आधार दिए जाने के लिए उद्धृत हैं, कि 2.27 करोड़ रुपए की रकम इस कारण से प्रेषित नहीं की जा सकती है कि याची को किसी भी सेवानिवृत्ति बकाया का संदाय करने से पहले अभी भी दो सहकारी संघों के मध्य समायोजित किया जाना है । सारणीकरण का प्रासंगिक भाग इस प्रकार उद्धृत है :–

> "908 तारीख 21 जून, 2016 द्वारा पी.सी.एफ. द्वारा देय धन रकम 2.27 करोड़ रुपए से समायोजित करके संदाय यू.सी.एफ. द्वारा किया गया है ।"

55. **गणेश प्रसाद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में, वस्तुतः, यह मुकदमेबाजी का दूसरा चरण है जिसे याची द्वारा सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण के लिए उत्तेजित किया गया था । उसने इस तथ्य का खुलासा किया था कि इससे पूर्व उसने 2012 की रिट याचिका सं. 457 फाइल की है, जिसका न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 24 मार्च, 2017 के अपने निर्णय के माध्यम से निपटारा किया था । जो इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेश का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया है :–

> "........याची के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि 2014 की रिट याचिका सं. 738 राजेन्द्र सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश वाले

[1] 2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 389.

मामले में और तारीख 25 फरवरी, 2015 को विनिश्चित याचिकाएं इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को आच्छादित किया है ।

तद्नुसार, वर्तमान रिट याचिकाएं आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर इसमें ऊपर उल्लिखित उद्धृत निर्णय के निदेशानुसार याची के मामले को विचार करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश देने के साथ निपटारा किया है ।"

56. संक्षिप्त तथ्य यह है कि जिन्हें याची ने मुकदमेबाजी के दोनों चरणों में इस न्यायालय के समक्ष लगातार उठाए हैं, यह कि याचियों ने दलील दी है कि उन्हें उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ इलैक्ट्रीशियन ग्रेड-II के रूप में नियुक्त किया गया था और तारीख 15 जून, 1987 को वापस लेकर इस प्रकार उन्हें सोयाबीन एवं वनस्पति इंडस्ट्रीज, हल्दूचौर, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में तैनात किया गया था जब तक कि उनकी सेवाओं का तारीख 1 जनवरी, 2005 से उत्तराखंड सहकारी संघ में विलय नहीं हो गया । उन्होंने दलील दी है कि उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ संतोषजनक रूप से काम करने के बाद, उसने तारीख 31 जनवरी, 2011 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त कर ली थी और शिफ्ट आपरेटर के पद से सेवानिवृत्त हो गए थे और याची द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के अनुरूप उनकी सेवाओं के विलय के बाद, उसे तारीख 29 जनवरी, 2011 को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा अंतिम वेतन प्रमाणपत्र जारी किया गया था, जो उनके द्वारा लिए गए अंतिम वेतन को प्रमाणित करता है, जिसके आधार पर, उत्तराखंड सहकारी संघ ने अपने पत्र सं.5774-79/यू.सी.एफ./2010-11, तारीख 3 फरवरी, 2011 के माध्यम से उपदान और अर्जित अवकाश रकम अवधारित किया है जिसके अधीन छह वर्ष की सेवाओं के लिए उपदान रकम के रूप में 74,807/- रुपए का संदाय किया गया था और उसी पत्राचार द्वारा 74 दिनों की अर्जित छुट्टी के रूप में 53,634/- रुपए की रकम उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा प्रेषित की गई थी । तारीख 15 जून, 1987 से तारीख 31 दिसंबर, 2004 तक की सेवाओं की शेष अवधि के लिए, उत्तराखंड सहकारी संघ अपने पत्र सं. 5774 तारीख 3 फरवरी, 2011

द्वारा संगणना करके उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड को भेजी थी और 18 वर्षों के लिए उपदान रकम के प्रेषण के लिए उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को सिफारिश की थी जो 2,24,661/- रुपए और 212 दिनों के लिए अर्जित अवकाश 1,53,601/- रुपए कुल रकम 3,78,262/- रुपए निर्धारित की थी ।

57. याची ने अभिवाक् किया है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अपने कार्यालय पत्राचार सं. 6488/93-यू.सी.एफ./2010-11 तारीख 3 मार्च, 2011 के पत्र द्वारा को 30 दिनों के लिए अर्जित अवकाश 21,634/- रुपए को मंजूरी दी थी तथापि, लेकिन शेष उपदान रकम और 183 दिनों के लिए अर्जित अवकाश रकम अभी तक जमा नहीं की गई थी और न ही यह अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर अवधारित की गई थी जो तारीख 29 जनवरी, 2011 को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी की गई थी, इस तथ्य के बावजूद कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अपने पत्र सं. पी.सी.एफ./लेखा/2011-11/6930 तारीख 28 दिसंबर, 2011 के द्वारा उपदान रकम 76,358/- रुपए और अर्जित अवकाश रकम 44,853/- रुपए और 5वें वेतन आयोग की बकाया रकम 16,429/- रूपए निर्धारित किया गया है । लेकिन उपरोक्त विवरण के अनुसार सेवानिवृत्ति लाभों के ये निर्धारण अधिकथित रूप से तारीख 29 जनवरी, 2011 के अंतिम वेतन प्रमाणपत्र पर आधारित नहीं है, इसलिए याची ने तारीख 29 जनवरी, 2011 के अंतिम प्रमाणपत्र के आधार पर उन सेवानिवृत्ति बकाया के प्रेषण के लिए वर्तमान रिट याचिका फाइल की है, जिसमें प्रत्यर्थियों ने प्रति-शपथपत्र फाइल किया है और उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा लिया गया आधार इस आशय से कि उन्होंने सेवानिवृत्ति लाभों के अपने दायित्व के भाग का निर्वहन किया है, लेकिन जहां तक प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 का संबंध है, अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, उन्होंने एक बार फिर एक बहुत ही अस्पष्ट उत्तर दिया है कि इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा दिए गए पूर्व के निर्णयों द्वारा अवधारित अनुपात के आधार पर जारी किए गए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर रकम नहीं भेजने के लिए उन्हें क्या जिम्मेदार ठहराया गया है, जैसा कि याची द्वारा अवलंब लिया गया था, जिसकी अभिपुष्टि माननीय उच्चतम न्यायालय ने की थी ।

58. इस मामले में भी, सारणी शीट में दलीलों के सुनवाई के दौरान उत्तराखंड सहकारी संघ ने जिसे उन्होंने तारीख 3 नवंबर, 2021 को प्रदान किया था, तारीख 3 अक्तूबर, 2011 के अपने पत्र सं. 2276 द्वारा उस प्रभाव से विवरण दिया था, 10,000/- रुपए ब्याज के साथ 67,358/- रुपए की रकम तारीख 23 दिसंबर, 2011 के चैक सं. 228629 के माध्यम से याची को संदत्त की गई थी । जिसके लिए याची के काउंसेल ने यह दलीलें दीं कि रकम का उक्त प्रेषण इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार नहीं है, न ही यह अंतिम वेतन प्रमाणपत्र पर आधारित है, जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा तारीख 29 जनवरी, 2011 को जारी किया गया था ।

59. **श्रीनिवास कश्यप** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1], एक बार फिर, इस रिट याचिका का मुकदमेबाजी में दूसरा चरण है । इससे पूर्व, याची ने 2017 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 2563 फाइल करते हुए इस न्यायालय को समावेदन किया था जिसे समन्वय न्यायपीठ ने तारीख 2 अप्रैल, 2019 को अपने निर्णय के माध्यम से निपटारा किया था । न्यायालय द्वारा जारी किए गए प्रासंगिक निर्देश इस प्रकार उद्धृत है :–

> "......उत्तर प्रदेश सहकारी संघ की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलीलें दीं हैं कि उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ ने इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के विरुद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष इजाज़त याचिका फाइल की है । उसने निष्पक्ष रूप से यह दलील दी है कि उक्त विशेष इजाज़त याचिका में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है । इस मामले को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान रिट याचिकाओं को 2015 की विशेष अपील सं. 137 में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा विशेष अपील में तारीख 3 जुलाई, 2017 को दिए गए निर्णय के निबंधनों में निपटाया जाता है ।"

---

[1] 2021 की रिट याचिका सं. 434.

60. वादी की दलीलें हैं कि जब उक्त निदेश का पालन नहीं किया गया था, तो उसने 2019 की अवमानना याचिका सं. 515 के नाते एक अवमानना याचिका फाइल की थी जिसमें अवमानना याचिका को उस आधार पर बंद कर दिया था कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 23 सितंबर, 2020 को एक पत्र जारी किया था, जिसमें यह दलील देते हुए कि उन्होंने उपदान रकम के रूप में 2,25,894/- रुपए और 206 दिनों की अर्जित छुट्टी के लिए 2,37,333/- रुपए के साथ 30,000/- रुपए प्रतिकर के रूप में मंजूर किए हैं । एक तरफ, उन्होंने तारीख 23 सितंबर, 2021 के अपने पत्र के माध्यम से अवमानना में यह आधार लिया है परंतु याची को यह दलील दी है कि उक्त रकम में से, जिसे तारीख 23 सितंबर, 2021 के पत्र द्वारा प्रेषित किया जाना दर्शाया गया है, इसलिए, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने उपदान के लिए 1,24,106/- रुपए की रकम, अर्जित अवकाश 77,744/- रुपए की रकम और प्रतिकर के लिए 12,491/- रुपए की स्वीकृति रकम का भागत: ही संदाय किया है । याची उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा इस प्रकार प्रेषित रकम से असंतुष्ट था । इसलिए, उसने यह रिट याचिका फाइल की है ।

61. याची ने दलील दी है कि वह तारीख 2 अप्रैल, 1985 को सोयाबीन एवं वनस्पति इंडस्ट्रीज, हल्दीचौर, हल्द्वानी, जिला नैनीताल में संचालक के रूप में प्रत्यर्थियों के साथ नियुक्ति हुई थी और तब से तारीख 1 जनवरी, 2005 से उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ अपनी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप, पुनर्गठन अधिनियम के खंड 54 के अधीन विचार किए गए उसके पेंशन लाभों के अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर संरक्षित किया जाना था जिसे उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख अर्थात् 31 जुलाई, 2013 को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था, जिसमें यह प्रमाणित किया गया था कि याची अपने अंतिम वेतन प्राप्ति के नाते प्रति मास 45,885/- रुपए के साथ प्रेषित किया जा रहा था, याची का पक्षकथन यह है कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ का संबंध है, उन्होंने तारीख 6 सितंबर, 2013 के अपने पत्र सं. 2315-20/यू.सी.एफ./2013-14 द्वारा तारीख 1 जनवरी, 2005 से तारीख 31 जुलाई, 2013 तक की अवधि के लिए उपदान और अर्जित अवकाश

रकम पहले ही अवधारित कर दी थी, जिसके लिए याची को उपदान रकम के लिए नौ वर्ष की अवधि हेतु कुल 2,17,111/- रुपए की रकम और 94 दिनों के लिए अर्जित अवकाश, के लिए 1,31,017/- रुपए की रकम अर्थात् 3,48,128/- रुपए उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा पहले ही संदत्त की जा चुकी है । उत्तराखंड सहकारी संघ ने उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को तारीख 6 सितंबर, 2013 के अपने पत्राचार को भी अग्रेषित किया था जिसमें यह मत व्यक्त करते हुए कि तारीख 2 अप्रैल, 1984 से 31 दिसंबर, 2004 तक की अवधि के लिए याची 19 वर्ष की अवधि के लिए उपदान रकम 4,58,346/- रुपए की रकम और 206 दिनों की अर्जित अवकाश की रकम 2,87,123/- रुपए जिसका कुल 7,45,469/- रुपए प्राप्त करने का हकदार हो गया परंतु तारीख 6 सितंबर, 2013 के पूर्वोक्त पत्राचार के बावजूद, प्रत्यर्थी उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने पत्र सं. सोया/वन/लेखा/2012-13/576 तारीख 26 दिसंबर, 2013 के नाते तारीख 26 दिसंबर, 2013 द्वारा उपदान के लिए 21,138/- रुपए और अर्जित अवकाश के लिए 12,756/- रुपए जो कुल रकम 33,894/- रुपए की मंजूरी दी थी और इसलिए याची ने परमादेश की रिट के अनुसरण के लिए यह रिट याचिका फाइल की है कि उसे अपने पक्ष में जारी किए गए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर तारीख 6 सितंबर, 2013 को दिए गए उनकी सारणी में उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा सिफारिश के रूप में पेंशन आदि लाभ प्रेषित किए जाएं ।

62. रिट याचिका में, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने रिट याचिका में याची द्वारा उद्धृत दलीलों पर प्रति-शपथपत्र के माध्यम से कोई उत्तर फाइल नहीं किया है, परंतु उत्तराखंड सहकारी संघ ने प्रति-शपथपत्र फाइल किया था और तारीख 6 सितंबर, 2013 के पत्राचार के संबंध में अपनी दलीलों की पुनरावृत्ति की थी और परिणामी रकम जो उनके द्वारा याची को पहले ही प्रेषित की जा चुकी थी । तथापि, सुनवाई के दौरान, तारीख 3 नवंबर, 2021 की सारणी में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने यह मत व्यक्त किया था कि निदेश के अनुपालन में, जो न्यायालय द्वारा जारी किए गए थे, पी.सी.एफ. मुख्यालय ने पत्र सं. 747 तारीख 4 जून, 2014 और पत्र सं. 1873 तारीख 23 सितंबर, 2020 को जारी

किए थे जिसके द्वारा यह दलील दी थी कि 2,25,894/- रुपए की रकम याची को 3,000/- रुपए शास्ति के साथ प्रेषित की गई है परंतु फिर भी इस प्रकार याची को वास्तविक हकदार के अनुसार अंतिम वेतन प्राप्ति के आधार पर संदाय नहीं किया गया है । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, द्वारा प्रदाय किए गए सारणीकरण में किया गया अवलोकन इस प्रकार उद्धृत है :–

> "1,24,106/- रुपए की रकम एवं माननीय न्यायालय के 747 तारीख 4 जून, 2014 एवं 2873 क्रम में अंतर धन रकम 2,25,984/- रुपए तारीख 23 सितंबर, 2020 के क्रम एवं प्रतिकर 3,000/- रुपए संदाय में पी.सी.एफ. मुख्यालय द्वारा किया गया ।"

63. **आशुतोष श्रीवास्तव** बनाम **उत्तर प्रदेश स्टेट सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] फिर से मुकदमेबाजी का दूसरा चरण है । वस्तुतः, उनके स्वर्गीय पिता ने 2009 की रिट याचिका सं. 354 फाइल करते हुए इस न्यायालय को पहले ही समावेदन किया था जिसमें उसके स्वर्गीय पिता ने सेवानिवृत्ति लाभों अर्थात् उपदान और अर्जित छुट्टी नकदीकरण के संदाय के लिए प्रार्थना की है, जिसमें उसने दलील दी हैं कि अन्यथा वह उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के कारण प्राप्त करने के हकदार होंगे । इस प्रकार याची द्वारा फाइल की गई रिट याचिका का निपटारा इस निम्नलिखित निदेश के साथ तारीख 12 नवंबर, 2009 के निर्णय द्वारा इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ द्वारा किया है :–

> "इसलिए, इन रिट याचिकाओं को अनुमति दी जाती है । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को इसके द्वारा निदेश दिया जाता है कि वे याचियों को तारीख 31 दिसंबर, 2004 तक उत्तर प्रदेश एस.सी.एफ. की सेवा की अवधि की एक प्रमाणित प्रति उत्तर प्रदेश एस.सी.एफ. के समक्ष प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर प्रस्तुत करें । जहां तक ब्याज का संबंध है, इसे इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा अस्वीकार कर दिया गया

[1] 2021 की रिट याचिका (एस/एस) सं. 485.

है और 6 प्रतिशत के ब्याज के बजाय 10,000/- रुपए का संदाय किया जा चुका है । इसलिए, यह भी निदेश दिया जाता है कि उत्तर प्रदेश एस.सी.एफ. प्रत्येक याची को 10,000/- रुपए ब्याज की रकम का संदाय करेगा ।

तद्नुसार इन रिट याचिकाओं को विनिश्चित किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।"

64. तारीख 21 नवंबर, 2009 के निर्णय से व्यथित होकर, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने 2009 की विशेष अपील सं. 229 फाइल की है जिसे खण्ड न्यायपीठ ने अपने तारीख 14 मई, 2012 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया । विशेष अपील खारिज होने के परिणामस्वरूप, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा तारीख 13 अक्तूबर, 2010 के पत्र सं. पी.सी. एफ./लेखा/मुख्यालय/2010-11 के नाते एक पत्र जारी करके कथन किया है कि जहां उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अपने चैक सं. 2793 तारीख 4 अक्तूबर, 2010 द्वारा 2,38,375/- रुपए का संदाय करने का दावा किया है । याची की दलील है कि उक्त रकम, जिसे उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अपने पत्र तारीख 13 अक्तूबर, 2010 के द्वारा प्रेषित किए जाने का कथन किया है, तारीख 31 जुलाई, 2008 को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किए गए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर संदाय करने के लिए अधिकथित सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है, जिसमें याची के स्वर्गीय पिता द्वारा लिए गए वेतन को 2,22,086/- रुपए के रूप में प्रमाणित किया गया है, और इसलिए, याची ने दलील दी है कि वह पत्राचार के आधार पर रकम के संदाय के लिए हकदार होगा जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को सोया/वन/लेखा/2010-11/514 तारीख 25 अक्तूबर, 2012 जारी किया गया था । जब उक्त रकम प्रेषित नहीं की गई तो याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की, इसमें यह दलील देते हुए की उसके स्वर्गीय पिता जो तारीख 11 जुलाई, 1985 को प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ एक ऑपरेटर के रूप में नियुक्त हुए थे और उन्होंने 31 जुलाई, 2008 को अधिवार्षिता की अपनी आयु प्राप्त करने तक प्रत्यर्थियों के साथ उक्त हैसियत से कार्य किया । उसने यह दलील दी की जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ का संबंध है, उत्तराखंड

सहकारी संघ अपने पत्र सं. 8212-16 (यू.सी.एफ.)/स्थापना/2008-09 तारीख 31 जुलाई, 2008 के द्वारा रकम प्रेषित करके दायित्व के अपने भाग का निर्वहन किया है और इसके परिणामस्वरूप, उत्तराखंड सहकारी संघ ने 4 वर्षों की सेवा के लिए उपदान रकम के रूप में 38,418/- रुपए और 104 दिनों की अर्जित अवकाश की रकम 58,268/- रुपए कुल मिलाकर 96,686/- रुपए प्रेषित किए हैं ।

65. याची ने दलील दी है कि उस समय जब उक्त रकम याची के स्वर्गीय पिता को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा प्रेषित की जानी थी, उक्त पत्राचार तारीख 11 जुलाई, 1985 से तारीख 31 दिसंबर, 2004 की अवधि के लिए अपने दायित्व निपटान करते हुए उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को पहले ही भेज दिया गया था । जिसमें तारीख 31 जुलाई, 2008 के अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर एक अवधारण किया गया था, जहां उपदान की रकम 19 वर्षों की सेवाओं के लिए 1,82,488/- रुपए और 184 दिनों के लिए अर्जित अवकाश की रकम 1,03,089/- रुपए कुल रकम 2,85,577/- रुपए संदाय किया जाना निर्धारित किया था । जब इसे अभी तक प्रेषित नहीं किया गया है तो याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की है ।

66. इस रिट याचिका में, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2, अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने तारीख 13 अप्रैल, 2021 को एक प्रति-शपथपत्र फाइल किया है, किंतु फिर भी, उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा किए गए पत्राचार के लिए उनके द्वारा किए गए विशिष्ट इनकार के बिना सेवानिवृत्ति लाभों के साथ प्रेषित किए जाने के लिए याची की हकदारी का एक बहुत ही अस्पष्ट उत्तर दिया गया है । इतना ही नहीं, तारीख 13 नवंबर, 2010 के सारणीकरण में, प्रत्यर्थियों ने ये मत व्यक्त किया है कि 1,15,459/- रुपए की रकम तारीख 1 अक्तूबर, 2021 को अपने पत्र सं 2631 के माध्यम से उनके द्वारा प्रेषित की गई है परंतु फिर भी यदि उक्त रकम जिसे प्रेषित किया गया दिखाया गया है, को उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2008 को किए गए संचार के आलोक में ध्यान में रखा जाता है, जिसमें उपदान और छुट्टी नकदीकरण की शेष रकम का अवधारण किया गया था, जो याची के स्वर्गीय पिता

को सेवानिवृत्ति लाभों की वास्तविक पात्रता के अनुरूप नहीं है, इसलिए वर्तमान रिट याचिका फाइल की ।

67. **नरेंद्र सिंह नेगी** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामलें में, यह रिट याचिका भी दूसरी रिट याचिका है । याची जिसे प्रत्यर्थी के साथ उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, मुजफ्फरनगर के जिला कार्यालय में मुनिम के रूप में नियुक्त किया था, वह तारीख 04 अप्रैल, 1973 से नियुक्ति की अपनी प्रारंभिक तारीख से अपनी सेवाओं का निर्वहन कर रहा है और चूंकि सेवानिवृत्ति लाभों को प्रेषित नहीं किया गया था, इसलिए उसने पूर्व में एक रिट याचिका फाइल की थी, जिसे तारीख 8 जुलाई, 2010 के निर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी । इसके बावजूद, रकम का संदाय नहीं किया गया था, इसलिए याची ने 2011 की अवमानना याचिका सं. 125 के रूप में अवमानना याचिका फाइल करनी पड़ी जिसमें इस न्यायालय की समन्वय न्यायपीठ के द्वारा तारीख 21 मई, 2011 को नोटिस जारी किए गए थे और इसके परिणास्वरूप, प्रत्यर्थी सं. 3 ने रिट याचिका अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को 1,46,227/- रुपए की उपदान रकम और तारीख 21 जून, 2011 के आदेश द्वारा अर्जित अवकाश के रूप में 39,039/- रुपए का संदाय किया था ।

68. याची की यह दलील है कि अवमानना याचिका फाइल करने के बाद और उसको नोटिस जारी करने पर रकम के प्रेषण के उपरोक्त अधिकथित अनुपालन, वास्तविक पात्रता को संतुष्ट नहीं करता है । जिसका उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा देय होने का आकलन किया गया था, क्योंकि वह अपनी सेवाओं के विलय के बाद कनिष्ठ सहायक के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद तारीख 30 जून, 2008 को अधिवार्षिता की आयु प्राप्त कर चुके थे, इसलिए, तारीख 6 नवंबर, 2004 के समझौता ज्ञापन के अनुसार, उनके सेवानिवृत्ति लाभों को पुनर्गठन अधिनियम की खंड 54 के अधीन संरक्षित किया गया था और इसलिए, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने तारीख 10 जुलाई, 2008 के अपने पत्र के माध्यम से प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को तारीख 4 अप्रैल, 1973 से तारीख 1 अक्तूबर, 2002 तक की अवधि के लिए लाभ के

[1] 2020 की रिट याचिका सं. 1828.

प्रेषण करने हेतु पत्र लिखा था, लेकिन उसे प्रेषित नहीं किया गया था, इसलिए याची ने इसमें दलील देते हुए वर्तमान रिट याचिका फाइल की है कि याची का दावा 2014 की रिट याचिका सं. 738 में दिए गए पूर्व के निर्णयों द्वारा पूरी तरह से समावेषित किया जाएगा जिसे तारीख 25 फरवरी, 2015 को समन्वय न्यायपीठ द्वारा निपटाया गया था । जिसमें समन्वय न्यायपीठ ने विशिष्ट रूप से यह अधिकथित किया है कि उपदान रकम और अर्जित अवकाश का प्रेषण अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा किया जाना था । उत्तराखंड सहकारी संघ और समन्वय न्यायपीठ ने अपने तारीख 25 फरवरी, 2015 के अपने निर्णय के माध्यम से जारी किया गया था और 2014 की रिट याचिका संख्या 738 के प्रत्येक याचियों को संदाय किए जाने के लिए 3,000/- रुपए का प्रतिकर अधिरोपित किया था ।

69. तारीख 25 फरवरी, 2015 के विद्वान् एकल न्यायधीश के उक्त निर्णय से व्यथित होकर उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने 2015 की विशेष अपील सं. 137 फाइल की जिसे इस न्यायालय की खण्डपीठ ने तारीख 3 जुलाई, 2017 के अपने निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था और बाद में उनकी विशेष इजाजत याचिका को भी उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 2 मार्च, 2020 के अपने निर्णय के माध्यम से खारिज कर दिया था । इसलिए, याची ने दलील दी कि पूर्वोक्त निर्णयों द्वारा अधिकथित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, वह सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण का हकदार होगा, जैसा कि रिट याचिका के पैरा 13 में याची द्वारा उल्लिखित किया गया हैं । जो इस प्रकार उद्धृत हैं :–

उत्तर प्रदेश पी.सी.एफ. तारीख 4 अप्रैल, 1973 से तारीख 1 अक्तूबर, 2002 तक

	देय	ड्रा/संदाय किया गया	संतुलन
उपदान (25 वर्ष)	3,50,978/-	1,46,227/-	2,04,751/-
छुट्टी अर्जित करें	94,908/-	39,039/-	55,869/-

70. इस न्यायालय के लिए रिट याचिकाओं के इन समूह में प्रत्येक विशिष्ट मामले का निपटान की आवश्यकता इस कारण से अपरिहार्य होगी कि, तथ्यात्मक रूप से, और पश्चात्वर्ती विकास के कारण, जो इस न्यायालय द्वारा **चंद्र मोहन अरोड़ा** बनाम **उत्तराखंड राज्य सहकारी संघ लिमिटेड और अन्य**[1] में दिए गए निर्णयों के बाद जैसा कि तारीख 29 नवंबर, 2019 को विनिश्चित किया था और 2015 की विशेष अपील सं. 137 में दिए गए निर्णय और 2020 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 5914 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप जैसा कि तारीख 27 अगस्त, 2020 को विनिश्चित किया गया था और तत्पश्चात् निर्विवाद तथ्यों और विधि का अनुसरण करते हुए, जो विचार के लिए उत्पन्न हुए हैं, वे थे कि ऊपरनिर्दिष्ट इन निर्णयों के सिद्धांत प्रत्येक याची के मामले में उनके सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण के उद्देश्यों के लिए समान रूप से लागू किए जाएंगे, जो अन्यथा पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 द्वारा संरक्षित है, जो यहां नीचे उद्धृत है :-

> "54. पेंशन .... पेंशन के संबंध में वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य का दायित्व इस अधिनियम की आठवीं अनुसूची में निहित उपबंधों के अनुसार उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल के उत्तराधिकारी राज्यों को दिया जाएगा या उनके मध्य विभाजित किया जाएगा ।"

71. पुनर्गठन अधिनियम, 2020 की धारा 54 के निहितार्थ को पुनर्गठन अधिनियम के भाग VIII की धारा 74 के अधीन अंतर्वलित उपबंधों के साथ परिशीलन करना है, जिसमें इसके पहले परंतुक में यह उपबंध किया गया है कि पुनर्गठन अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन के परिणामस्वरूप, राज्य या कानून के अधीन सृजित निगमों के साथ कार्यरत कर्मचारियों की सेवाएं, उनकी सेवाओं के विलय पर, उनकी सेवा शर्तों को उनके हित के लिए नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता और उन्हें एक नुकसान की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है, जिसे वे अन्यथा प्राप्त करने के हकदार होते है, यदि राज्यों को राजनीतिक और विधायी कारणों से विभाजित नहीं किया जाता और क्योंकि उनका हित कानूनी

---

[1] 2018 की रिट याचिका सं. 448.

रूप से संरक्षित होता है, तो वे पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 के अधीन विधिक रूप से प्राप्त किए गए संरक्षण के अधीन सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करने के हकदार होते हैं ।

72. उपरोक्त संविक्षा के आधार पर, निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं :–

(i) उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में स्वीकृत तथ्य यह है कि याचियों या कुछ मामलों में याचियों के पूर्वाधिकारों ने आरम्भ में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को सेवाओं में सम्मिलित हुए थे ।

(ii) यह एक स्वीकृत तथ्य है कि तारीख 9 नवंबर, 2000 से उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप, उत्तराखंड राज्य के लिए एक स्वतंत्र सहकारी संघ तारीख 1 जनवरी, 2005 से अस्तित्व में आया और उन कर्मचारियों की सेवाएं, जो उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तराखंड राज्य के दो सहकारी संघों के सचिवों के मध्य हुए समझौता ज्ञापन में सूचीबद्ध थे या अन्यथा भी उनकी सेवाएं तारीख 1 जनवरी, 2005 से उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ विलय हो गई थीं ।

(iii) रिट याचिकाओं के पक्षकारों का यह भी एक स्वीकृत पक्षकथन है कि सभी याचियों ने अपनी सेवा का कार्यकाल संतोषजनक रूप से पूरा करने के बाद अपनी-अपनी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप अधिवार्षिता की आयु प्राप्त कर चुके है, जैसा कि ऊपर विस्तृत चर्चा की गई है, जो पात्रता के अनुसार, संघों पर लागू सुसंगत सेवा नियम के अधीन, वे उपदान रकम के साथ ही छुट्टी नकदीकरण रकम और उसके साथ ही वेतन आयोग के लाभ के बकाया आदि के प्राप्त करने के हकदार हैं ।

(iv) रिट याचिकाओं के सभी पक्षों का यह एक स्वीकृत पक्षकथन है कि उत्तराखंड सहकारी संघ से अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने पर, उत्तराखंड सहकारी संघ ने उनके पक्ष में अंतिम वेतन प्रमाणपत्र जारी किया था जिस पर उत्तर प्रदेश सहकारी संघ

द्वारा किसी भी स्तर पर विवादित नहीं किया गया था, जिसे उनकी सेवानिवृत्ति लाभों के अवधारण के उद्देश्यों के आधार के रूप में लिया जाना था, सिद्धातों के अनुसार, जो निर्णय द्वारा अवधारित किया गया था जैसा कि 2014 की रिट याचिका सं. 738 राजेंद्र सिंह और अन्य वाले मामले में, तारीख 25 फरवरी, 2015 में दिया गया था, जिसे 2015 की विशेष अपील सं. 137 में और एस.एल.पी. में भी तारीख 2 मार्च, 2020 को खारिज कर दिया गया था, जिसका अर्थ है अंततः सभी मामलों में, सेवा के किसी भी कार्यकाल के लिए, चाहे वह उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ की गई हो या उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ सेवाओं के विलय के बाद, उपदान, अर्जित अवकाश और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का अवधारण अनिवार्य रूप से निर्विवाद अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर किया जाना आवश्यक था जो सेवानिवृत्त लोगों के पक्ष में जारी किए गए थे, अर्थात् रिट याचिकाओं के इन समूह के याचियों के पक्ष में जारी किए गए थे ।

(v) यह भी स्वीकृत पक्षकथन है और जैसा उत्तराखंड सहकारी संघ और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा फाइल किए गए संबंधित प्रति-शपथपत्र से भी स्पष्ट होता है कि जहां तक उत्तराखंड सहकारी संघ में याचियों द्वारा की गई सेवाओं के कार्यकाल के संबंध हैं, याचियों के उपदान और छुट्टी नकदीकरण की रकम के प्रेषण के संबंध में विवाद में नहीं हैं, क्योंकि यह अवधारित किया गया है कि संबंधित याचियों के पक्ष में जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा देय और संदत्त किया जाएगा ।

(vi) यह भी विवादित नहीं है और अभिलेखों से भी स्पष्ट है कि जिनको उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा समान रूप से ध्यान दिया गया है कि जब उन्होंने, याचियों की उपदान और अर्जित छुट्टी नकदीकरण प्राप्त करने के हक से संबंधित कुल वित्तीय जटिलताएं अवधारित किए और अपने हिस्से का संदाय करते समय, उत्तराखंड

सहकारी संघ से भी इसी प्रकार की सिफारिश की है कि वे प्रत्येक सेवानिवृत्त याची के संबंध में, याचियों द्वारा की गई सेवाओं की अवधि के लिए रकम का अवधारण करें और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उनकी नियुक्ति की प्रारंभिक तारीख से संदाय करने के लिए, उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ अपनी सेवाओं के विलय के बाद अपनी सेवाएं प्रदान की हैं ।

(vii) यह भी विवादित नहीं है और बल्कि इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा लिए गए विनिश्चय से यह सुस्थिर भी है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का कर्मचारी उसे देय उपदान**,** अर्जित छुट्टी और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का पूर्ण हकदार है, जो पहले के उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ की गई सेवाओं की अवधि के आधार पर आनुपातिक रूप से विभाजित किया जाना था और सेवाओं की अवधि के संबंध में जो उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ की गई थी और दोनों राज्यों के प्रत्येक संबंधित सहकारी संघ उनके साथ कर्मचारियों द्वारा की गई सेवाओं की अवधि के आधार पर दायित्व का अपना हिस्सा वहन करेगा ।

(viii) यह विवादित नहीं है और बल्कि माननीय उच्चतम न्यायालय भी यह सुस्थापित किया है कि प्रदान की गई सेवाओं के किसी अवधि के लिए सेवानिवृत्ति लाभों का अवधारण या तो उत्तराखंड सहकारी संघ या उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा किसी कर्मचारी की अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने पर उसके पक्ष में जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर किया जाना था । उत्तर प्रदेश सहकारी संघ किसी कर्मचारी से अंतिम वेतन प्रमाणपत्र नहीं ले सकता है जो उत्तराखंड सहकारी संघ के साथ उसकी सेवाओं के विलय की तारीख पर विद्यमान था, जो उत्तराखण्ड सहकारी संघ में उनके कर्मचारियों द्वारा सेवाओं के विलय के पूर्व प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए उपदान और अर्जित छुट्टी नकदीकरण अवधारित करने का मापदंड है ।

73. इस नायायालय के समक्ष लम्बित मामलों और याचियों में से

प्रत्येक के संबंध में इस पहलू से निपटने की आवश्यकता इसलिए आवश्यक हो गई क्योंकि वे दशकों से एक साथ सुसंगत मुकदमा होने के बावजूद और इस तथ्य के बावजूद कि संविवाद, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद अब किसी भी न्यायालय के समक्ष लंबित नहीं हैं, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अपने स्वयं के विवेक और सनक के आधार पर सेवानिवृत्त कर्मचारियों को उनके वास्तविक अधिकार के साथ समुचित रूप से उपदान की रकम और अर्जित छुट्टी नकदीकरण पारिश्रमिक नहीं दिया । इसलिए विवाद निम्नलिखित दृष्टिकोण से उद्भूत हुआ :–

(क) चूंकि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर सेवानिवृत्ति रकम का संदाय नहीं कर रहा था, जो उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था, याचियों ने अपनी अधिवार्षिता की आयु प्राप्ति पर परमादेश रिट जारी करने की मांग की है, कि प्रत्यर्थियों अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए अंतिम वेतन प्रमाणपत्र प्रदान करने और अर्जित छुट्टी नकदीकरण और उन्हें देय अन्य सेवानिवृत्ति देय रकम का अवधारण करने का निदेश दिया जा सकता है जबकि यह उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा नहीं किया जा रहा था, इसलिए, रिट याचिकाएं फाइल की हैं ।

(ख) विवाद तब उद्भूत हुआ जब उत्तर प्रदेश सहकारी संघ वास्तविक ब्यौरे के अनुसार, जैसा कि उसने पहले उपरोक्त चर्चा की है, ने आंशिक रूप से रकम का संदाय किया था और आंशिक रूप से उन्होंने इस बहाने से रकम प्रेषित करने से इनकार कर दिया है कि चूंकि दोनों संघों के मध्य दायित्वों का समझौता ज्ञापन के आधार पर तय किया जाना बाकी है, और 2.27 करोड़ रुपए की शेष रकम का निपटारा किया जाना बाकी है तो शेष रकम का संदाय किया जाएगा, वस्तुतः, इस विवाद्यक पर भी इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था, जिसमें यह मत

व्यक्त किया गया था कि किसी भी प्रशासनिक परिस्थितियों के अधीन सेवानिवृत्त कर्मचारियों को किसी भी रीति से पीड़ित नहीं किया जा सकता है भले ही दोनों संघों के मध्य उनकी संपत्तियों और दायित्वों के निपटान में कोई विवाद हैं, जो विशेष रूप से एक अलग विवाद्यक है, लाभों के लिए, जो अन्यथा कर्मचारियों के पक्ष में संरक्षित हैं, उपबंधों को ध्यान में रखते हुए पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 के उपबंधों के साथ परिशीलन किया जाना चाहिए, जो धारा 54 में अंतर्वलित हैं ।

(ग) यह विवाद्यक पहले भी झगड़े की जड़ थी कि सेवाओं का अंतराल; तारीख 1 जनवरी, 2005 से उनकी सेवाओं के विलय के परिणामस्वरूप, जिन कर्मचारियों की सेवाओं का इस प्रकार विलय हो गया था, उनकी नियुक्ति का संबंधित तारीख से अधिवार्षिता की आयु प्राप्त होने तक सेवाओं की निरंतरता पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, जब मध्य की अवधि के दौरान राजनीतिक और विधायी निर्णयों के कारण याचियों की सेवाओं को दो संघों में विभाजित कर दिया गया है, क्या इसे सेवानिवृत्ति लाभों के निपटारे के उद्देश्यों के लिए निरंतरता में सेवा माना जाएगा ।

74. उपरोक्त विवाद के कारण, जो एक सामान्य बोलचाल के अधीन और विशेष रूप से पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 के उपबंध के साथ धारा 54 के सुसंगत निर्वचन से उद्भूत हुआ है, इस न्यायालय का यह मत है कि उत्तराखंड सहकारी संघ के सृजन के परिणामस्वरूप, पुनर्गठन अधिनियम के विधायी निहितार्थ के कारण, मेरा यह मत है कि याचियों और उनके पूर्ववर्तियों की सेवाओं को उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ उनकी प्रासंगिक नियुक्ति की उनकी संबंधित तारीख से निरंतरता में किया गया एक ही सेवा माना जाएगा और तार्किक रूप से भी इसे उसके पश्चात्वर्ती उत्तराखंड सहकारी संघ से सेवानिवृत्ति कर्मचारियों से संबंधित सेवानिवृत्ति के लाभों के अवधारण या संगणना के उद्देश्यों के लिए उनकी सेवा में एक त्वरित या विराम के रूप में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि इसे पुनर्गठन अधिनियम की धारा 54 के

साथ-साथ धारा 74 के उपबंधों के अधीन संरक्षित किया गया है । इसलिए, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ में शामिल होने की तारीख से सेवाओं की उक्त अवधि, उत्तराखंड सहकारी संघ से उनकी सेवाओं के विलय होने के बाद संबंधित सेवानिवृत्ति की तारीख तक, कर्मचारियों को सभी सेवा लाभों के अनुदान के लिए निरंतरता में एक समान सेवा के रूप में माना जाएगा, जो वे अन्यथा विधि के अनुसार हकदार होते, दोनों सहकारी संघ, उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप सृर्जित नहीं हुए थे ।

75. दलील जिसका उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा विस्तार किया गया था कि उस अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर इसे अवधारित करते हुए, कर्मचारी को सेवानिवृत्ति लाभों का संदाय करने के लिए वे बाध्य नहीं हो सकते हैं जिसे कर्मचारी की अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने की तारीख को उत्तराखण्ड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था क्योंकि उनका दायित्व उसके ऊपर नहीं डाला जा सकता है और वे मात्र उनका दायित्व सेवानिवृत्त लाभों तक सीमित है जो सेवाओं में विलय की तारीख पर संबंधित कर्मचारियों द्वारा आहरित अंतिम वेतन पर आधारित है, यह एक तर्क है जो इस न्यायालय द्वारा स्वीकार्य नहीं है, इस कारण से कि इस विवाद्यक को इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ के तारीख 3 जुलाई, 2017 को दिए गए निर्णय में पहले ही अधिकथित किया जा चुका है, जिसकी बाद में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 2 मार्च, 2020 में दिए गए निर्णय में अभिपुष्टि की गई थी ।

76. चूंकि, इस न्यायालय का यह दृष्टिकोण हैं कि उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र, जो सेवानिवृत्ति लाभों की संगणना का आधार है, वस्तुतः, यह एक अधिरोपित परिस्थितियां थीं जो राज्य के सृजन के कारण प्रकृति में विशिष्ट थीं । जहां तक किसी राज्य का सृजन या उत्तर प्रदेश राज्य के दो संघों और उत्तराखण्ड राज्य को विभाजित करने का निर्णय का संबंध है, वास्तव में, कर्मचारियों का इसमें कोई योगदान नहीं था, और उस स्थिति में, संचयी लाभों, जो एक कर्मचारी को प्राप्त होते हैं, ऐसे संघों का विभाजन नहीं हुआ था क्योंकि

उत्तराखंड राज्य के सृजन के परिणामस्वरूप, याची अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर सेवानिवृत्ति लाभों के अवधारण के लिए हकदार था जो अधिवार्षिता की आयु प्राप्त करने की संबंधित तारीख को उसके पक्ष में जारी किए गए थे । यह सादृश्य अधिनियम की धारा 74 के उपबंध के अधीन संरक्षित आधार भी हैं जिसे इसके परन्तुक के साथ परिशीलन किया जाना चाहिए ।

77. पूर्वोक्त कारणों से, रिट याचिकाओं के इन सभी समूहों को उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ के साथ मंजूर किया जाता है, चूंकि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि उत्तराखंड सहकारी संघ ने पहले ही अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर जो उनके द्वारा जारी की गई थी, रकम प्रेषित कर दी हैं, अतएव, उत्तराखंड सहकारी संघ के लिए कोई परमादेश रिट जारी किए जाने की आवश्यकता नहीं है । जहां तक उत्तर प्रदेश सहकारी संघ का संबंध है, निम्नलिखित परमादेश रिट जारी किया जाता है :–

1. यह है कि उत्तर प्रदेश सहकारी संघ, उत्तराखंड सहकारी संघ उपदान संदाय अधिनियम की धारा 7(3)क के अधीन उपदान, अर्जित अवकाश और रोकी गई रकम पर देय ब्याज का बकाया अवधारित करना सुनश्चित करेगा, उस सेवा अवधि के लिए जो अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर जिसे उत्तराखंड सहकारी संघ द्वारा जारी किया गया था, उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी संघ के साथ संबंधित याचियों द्वारा प्रदान की गई हैं । एतद्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि दोनों सहकारी संघों के मध्य विवाद जो समझौता ज्ञापन के निबंधनों पर अधारित हैं जिसे कभी-कभी उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में दर्शाया गया है, इस न्यायालय का यह मत है कि सेवानिवृत्त कर्मचारियों की संबंधित आयु को देखते हुए, उनके निपटान के निबंधन सेवानिवृत्ति लाभों के प्रेषण में कोई बाधा पैदा नहीं करेगें, क्योंकि इन सभी विवाद्यकों को ऊपरनिर्दिष्ट खण्ड न्यायपीठ के निर्णयों द्वारा पहले ही निपटारा कर दिया गया है ।

उस संदर्भ में कोई लापरवाही अवमानना भी होगी ।

2. इसलिए, एतद्द्वारा, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को धारा 7 (क) के अधीन उस पर देय कानूनी ब्याज के साथ उपदान, अर्जित अवकाश और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ याचियों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की अवधि के लिए जारी अंतिम वेतन प्रमाणपत्र पर आधारित, खण्ड न्यायपीठ द्वारा यथाविनिश्चित दर पर संदाय करने का निदेश दिया जाता है और उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को इस निर्णय की सत्यापित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो मास की अवधि के भीतर रकम प्रेषित करने का निदेश दिया जाता है ।

3. एतद्द्वारा, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ को निर्णय के अनुपालन की रिपोर्ट निर्णय देने की तारीख से एक मास के भीतर देने का निदेश दिया जाता है ।

4. यह भी कि पूर्वसावधानी के एक उपाय के रूप में, यह मत व्यक्त किया जाता है कि यदि कोई धनराशि पहले ही उत्तर प्रदेश सहकारी संघ ने याचियों में से किसी को प्रेषित कर दी है तो उसे तद्नुसार, संबंधित अंतिम वेतन प्रमाणपत्र के आधार पर सेवानिवृत्त कर्मचारी को अंतिम संदाय करते हुए समायोजित किया जाएगा ।

78. पूर्वोक्त चर्चाओं के अध्यधीन, उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के साथ रिट याचिकाएं मंजूर की जाती हैं । तथापि, खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिकाएं मंजूर की गईं ।

मही./क.

ललित कुमार जटवार

बनाम

श्रीमती सुषमा जटवार

(2019 की एफ. ए. एम. सं. 185)

तारीख 3 फरवरी, 2022

न्यायमूर्ति गौतम भादुड़ी

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 19 [सपठित संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 4, 6, 7, 8, 17 और 35] – शिशु की अभिरक्षा – माता-पिता का मिलने और स्पर्श करने का अधिकार – शिशु का हित सर्वोपरि होना – यदि माता-पिता के बीच विवाद के कारण शिशु के पालन-पोषण एवं अभिरक्षा संबंधी वाद फाइल किया जाता है तो माता-पिता में से किसी को भी मिलने और स्पर्श करने का अधिकार और अभिरक्षा में देने का विनिश्चय करते समय शिशु का सर्वोपरि हित और उसके नैसर्गिक अधिकारों को ध्यान में रखना चाहिए और यथासम्भव दोनों माता-पिता का स्पर्श, स्नेह और प्यार पाने से शिशु को गम्भीर परिस्थितियों में ही वंचित करना चाहिए ।

वर्तमान मामले में, शिशु के पिता ने कुटुंब न्यायालय, रायपुर द्वारा पारित तारीख 10 मई, 2019 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की है, जिसमें माता/प्रत्यर्थी को शिशु की अभिरक्षा रखने का आदेश दिया गया है । इस मामले के निर्विवादित तथ्य यह है कि तारीख 16 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह हुआ था और उन्हें उनके विवाह से तारीख 25 मार्च, 2014 को एक शिशु का जन्म हुआ, उसका नाम दिव्यराज सिंह रखा गया । जन्म के समय शिशु किसी बीमारी से व्याधित था । उसकी रीढ़ की हड्डी में गांठ थी, जिसके कारण वह मूत्र आदि कार्य समुचित रूप से नहीं कर पा रहा था, इसलिए, शिशु का लगातार उपचार चल रहा था । माता-पिता की स्थिति के संबंध में, अपीलार्थी/पति शिक्षा विभाग में खंड शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य कर

रहा है और प्रत्यर्थी/पत्नी एक स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य कर रही हैं । समय बीतने के साथ, वे अपनी नौकरी में विभिन्न स्थानों पर पदस्थ हुए । पति, प्रारंभ में मैनपाट में और पत्नी बिल्हा में पदस्थ थी, दोनों 200 किलोमीटर से अधिक की दूरी पर थे । तत्पश्चात्, कथनानुसार शिशु को समुचित उपचार उपलब्ध कराने के लिए पत्नी का स्थानांतरण रायपुर हो गया । इस दौरान, पक्षकारों के बीच संबंध खराब हो गए और पति ने आरोप अभिकथित किया कि पत्नी, शिशु का समुचित उपचार नहीं कर रही, जबकि पत्नी ने लापरवाही के ऐसे अभिकथन से इनकार किया और कथन किया कि वह शिक्षाकर्मी के पद पर कार्यरत हैं और उसे 25,000-30,000/- रुपए वेतन मिलता है तथा शिशु का संपूर्ण उपचार किया गया और उसकी समुचित देखभाल की गई । पक्षकारों के बीच विवाद बढ़ गया और शिशु के माता/प्रत्यर्थी की अभिरक्षा में रहने के दौरान पति/अपीलार्थी ने शिशु की अभिरक्षा के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, जिसका विनिश्चय तारीख 10 मई, 2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा किया गया, जिसके तहत पिता/अपीलार्थी को अभिरक्षा से वंचित कर दिया गया, इसलिए, यह अपील फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में पक्षकारों के कथन पर लौटते हैं, पिता/अपीलार्थी के अनुसार, उसका कथन है कि विवाद तब उद्भूत हुआ जब वह मैनपाट में पदस्थ था और मैनपाट एक सुदूर क्षेत्र होने के कारण, वहां उपचार की सुविधा उपलब्ध नहीं थी । उसने कथन किया कि जब वह शिशु के साथ रहता था, तो वह प्रातःकाल शिशु को पेशाब कराने में मदद करता था, उसे तैयार करता था और उसके पश्चात् वह अपने कार्य पर जाया करता था । इसकी तुलना में माता/प्रत्यर्थी जो कि नौकरी करती है, अपने कार्यस्थल पर शिशु को अपने साथ ले जाती थी । उसने यह भी स्वीकार किया कि आज तक माता शिक्षक की नौकरी करते हुए शिशु को अपने साथ ले जाती थी । माता के कथन से दर्शित होता है कि वह लगभग 30,000/- रुपए कमाती है और इस तथ्य से तनाव में है कि चूंकि शिशु की देखभाल करने वाला कोई नहीं था, इसलिए वह उसे अपने साथ ले जाती थी । इसके अतिरिक्त, उसके कथन से प्रदर्शित होता है कि प्रारंभ में जब शिशु को जन्म से ही किसी बीमारी

से पीड़ित पाया गया, तो माता और पिता दोनों ने अलग-अलग चिकित्सकों से मुलाकात की और शिशु को स्पाइना बिफिडा से पीड़ित पाया गया । जब वह धरसिवा के किसी विद्यालय में पदस्थ थी, तब उसने शिशु के उपचार के लिए पिता द्वारा किए गए किसी भी प्रयास का विरोध नहीं किया । उसने इसके अतिरिक्त कथन में माता ने दलील ही है कि शिशु अस्वस्थ है और जब कुछ सुधार होगा तो उसे चिकित्सालय में भर्ती कराया जाएगा । इसके अतिरिक्त माता ने दलील दी है कि अपीलार्थी/पिता शिशु की देखभाल कर सकते हैं लेकिन शिशु को बेहतर देखभाल के लिए माता की संगति की आवश्यकता होगी । यह कथन किया गया है ऐसा लगता है कि मूत्र निकालने के लिए पेट को दबाना पड़ता है, इसके अतिरिक्त कि वह शिशु का इलाज कराने के लिए अपीलार्थी/पिता के साथ कहीं भी जाने के लिए तैयार और इच्छुक है और साथ जाने से इनकार नहीं करेगी । विद्यमान कारकों से दर्शित होता है कि पिता खंड शिक्षा अधिकारी के उच्च पद पर पदस्थ है, जिसे क्षेत्र में कार्य का निर्वाह करना पड़ता है, यद्यपि माता भी, अध्यापन के कार्य में है और शिशु की देखभाल करने के लिए वह शिशु को अपने साथ विद्यालय भी ले जाती है, इसलिए, पिता भी एक शुभचिंतक है और शिशु की देखभाल करना चाहता है, लेकिन शिशु की देखभाल करने के लिए माता द्वारा की जाने वाली देखभाल का स्तर अधिक है, विशेष रूप उस बीमारी की प्रकृति पर विचार करने पर जिससे शिशु जन्म से पीड़ित है । माता द्वारा की जाने वाली देखभाल और कार्य की प्रकृति अधिक महत्वपूर्ण है । यह स्पष्ट है कि जब पिता एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर क्षेत्र में कार्य कर रहा है, तो यह कैसे आशा की जा सकती है कि पिता शिशु को शारीरिक सहायता देने में समर्थ होगा ? दूसरी ओर, माता कुछ उत्साह के साथ बीमार शिशु को अधिक शारीरिक सहायता देने में समर्थ होगी । इसलिए, कुटुंब न्यायालय का यह निष्कर्ष कि शिशु का कल्याण माता की अभिरक्षा में बेहतर स्तर पर होगा, न्यायोचित प्रतीत होता है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अब पिता को शिशु से मिलने के अधिकारों पर वापस आते हैं, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने आदेश दिया है कि माता/पत्नी को नोटिस देने के पश्चात् पिता कुछ समय के लिए शिशु के साथ रह सकता है, जिसे लागू करना अव्यवहारिक प्रतीत होता है । कुटुंब न्यायालय द्वारा बिना किसी विशेष

दिशा-निर्देश या निदेश के मिलने का अधिकार अस्पष्ट होगा । इसी प्रकार के विवाद्यक पर न्याय निर्णयन करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला था कि अभिरक्षा की लड़ाई में शिशु ही सदैव पीड़ित होता है । यह भी अभिनिर्धारित किया था कि दोनों पति-पत्नी के बीच दंभ और बढ़ती उग्र लड़ाइयों और मुकदमों में, माता-पिता जो अन्यथा अपने शिशु से प्यार करते हैं, एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जैसे कि दूसरा पति या पत्नी खलनायक है और उस शिशु की अभिरक्षा पाने का अधिकार मांगता है । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कम उम्र के शिशु को माता-पिता दोनों के प्यार, स्नेह, साथ और सुरक्षा की अपेक्षा होती है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह शिशु की नैसर्गिक आवश्यकता है जो उसका मूल मानव अधिकार है, सिर्फ इसलिए कि माता-पिता एक दूसरे के साथ लड़ाई में हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि शिशु को दोनों में से किसी एक की देखभाल, स्नेह, सुरक्षा, प्यार या सुरक्षा से वंचित कर दिया जाना चाहिए । यह भी अभिनिर्धारित किया कि शिशु कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसे एक माता-पिता से दूसरे माता-पिता के पास फेंका जा सके और हर अलगाव के पश्चात्, हर पुनर्मिलन का शिशु पर अभिघात और मनोदैहिक प्रभाव हो सकता है । उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक अभिभावक को अभिरक्षा दिए जाने के पश्चात् भी, दूसरे अभिभावक के पास शिशु से मिलने का पर्याप्त अधिकार होना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि शिशु दूसरे अभिभावक के संपर्क में रहे और दोनों अभिभावकों में से किसी एक के साथ से उसका सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक संपर्क न टूटे । मात्र गंभीर परिस्थितियों में ही एक अभिभावक को शिशु से मिलने से वंचित किया जाना चाहिए । इस मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर, ऐसी कोई गंभीर परिस्थिति नहीं दर्शित होती है, जिसके अधीन एक अभिभावक को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए शिशु से मिलने से वंचित किया जा सके । अभिलेख पर जो साक्ष्य हैं, उनसे दर्शित होता है कि यद्यपि पति-पत्नी दोनों अलग-अलग रह रहे हैं और शिशु की अभिरक्षा पत्नी के पास है, लेकिन पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है, इसलिए, पति-पत्नी दोनों के अलग-अलग रहने के कारण स्पष्ट नहीं हैं या सामने नहीं आए हैं । उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त वाले मामले में यह भी निष्कर्ष निकाला कि भारत में "मिलने के

अधिकार की" अवधारणा पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है । अधिकांश न्यायालय एक पति या पत्नी को अभिरक्षा देते समय दूसरे पति या पत्नी को मिलने का अधिकार प्रदान करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं करते हैं । यह अभिनिर्धारित किया कि शिशु को माता-पिता दोनों का प्यार और स्नेह पाने का मानव अधिकार है और न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए आदेश पारित करना चाहिए कि शिशु अपने माता-पिता में से किसी भी एक के प्यार, स्नेह और साथ से पूरी तरह वंचित न रहे । (पैरा 8, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	(2020) 3 एस. सी. सी. 67 : **यशिता साहू** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** ;	2,10,13
[2020]	2020 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 878 : **रितिका शरण** बनाम **सुजॉय घोष** ;	2,13
[2019]	(2019) 7 एस. सी. सी. 42 : **तेजस्विनी गौड़ और अन्य** बनाम **शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य** ;	6
[2009]	(2009) 1 एस. सी. सी. 42 : **गौरव नागपाल** बनाम **सुमेधा नागपाल** ;	2,7
[2008]	(2008) 9 एस. सी. सी. 413 : **नील रतन कुंडू** बनाम **अभिजीत कुंडू** ;	6
[2003]	2003 (36) ऑनलाइन मद्रास 48 = ए. आई. आर. 2003 मद्रास 315 : **एम. के. हरि गोविंदन** बनाम **ए. आर. राजाराम** ।	7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की एफ. ए. एम. सं. 185.

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मनोज परांजपे

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. डी. कुलदीप

न्यायमूर्ति गौतम भादुड़ी – सुना गया ।

इस वर्तमान अपील को शिशु के पिता ने कुटुंब न्यायालय, रायपुर द्वारा पारित तारीख 10 मई, 2019 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की है, जिसमें माता/प्रत्यर्थी को शिशु की अभिरक्षा रखने का आदेश दिया गया है । इस मामले के निर्विवादित तथ्य यह हैं कि तारीख 16 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह हुआ था और उन्हें उनके विवाह से तारीख 25 मार्च, 2014 को एक शिशु का जन्म हुआ, उसका नाम दिव्यराज सिंह रखा गया । जन्म के समय शिशु किसी बीमारी से व्याधित था । उसकी रीढ़ की हड्डी में गांठ थी, जिसके कारण वह मूत्र आदि कार्य समुचित रूप से नहीं कर पा रहा था, इसलिए, शिशु का लगातार उपचार चल रहा था । माता-पिता की स्थिति के संबंध में, अपीलार्थी/पति शिक्षा विभाग में खंड शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य कर रहा है और प्रत्यर्थी/पत्नी एक स्कूल में शिक्षक के रूप में कार्य कर रही है । समय बीतने के साथ, वे अपनी नौकरी में विभिन्न स्थानों पर पदस्थ हुए । पति, प्रारंभ में मैनपाट में और पत्नी बिल्हा में पदस्थ थी, दोनों 200 किलोमीटर से अधिक की दूरी पर थे । तत्पश्चात्, कथनानुसार शिशु को समुचित उपचार उपलब्ध कराने के लिए पत्नी का स्थानांतरण रायपुर हो गया । इस दौरान, पक्षकारों के बीच संबंध खराब हो गए और पति ने आरोप अभिकथित किया कि पत्नी, शिशु का समुचित उपचार नहीं कर रही, जबकि पत्नी ने लापरवाही के ऐसे अभिकथन से इनकार किया और कथन किया कि वह शिक्षाकर्मी के पद पर कार्यरत हैं और उसे रु. 25,000-30,000/- वेतन मिलता है तथा शिशु का संपूर्ण उपचार किया गया और उसकी समुचित देखभाल की गई । पक्षकारों के बीच विवाद बढ़ गया और शिशु के माता/प्रत्यर्थी की अभिरक्षा में रहने के दौरान पति/अपीलार्थी ने शिशु की अभिरक्षा के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, जिसका विनिश्चय तारीख 10 मई, 2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा किया गया, जिसके तहत पिता/अपीलार्थी को अभिरक्षा से वंचित कर दिया गया, इसलिए, यह अपील फाइल की गई है ।

2. अपीलार्थी/पिता के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया है कि यद्यपि दोनों पक्षकारों के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, लेकिन यह इस हद तक भी खराब नहीं था कि वे एक-दूसरे को देखना भी नहीं चाहते हैं । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि पत्नी/प्रत्यर्थी और पति/अपीलार्थी के कथनों को अगर एक साथ पढ़ा जाए, तो यह दर्शित होता है कि विवाद कभी बढ़ा नहीं, लेकिन दुर्भाग्य से, वे अभिरक्षा की लड़ाई में उलझ गए । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि निचले न्यायालय को पत्नी (प्रत्यर्थी) और पति (अपीलार्थी) के साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन करना चाहिए था और यह निवेदन किया कि शिशु के समुचित पालन-पोषण के लिए पिता की उपस्थिति भी बराबर महत्वपूर्ण है, इसलिए, जब पक्षकारों के बीच कोई विवाद नहीं है, तो पिता/अपीलार्थी को अभिरक्षा दी जानी चाहिए थी । उन्होंने यह भी दलील दी है कि निचले न्यायालय ने शिशु की अभिरक्षा को माता के साथ अक्षुण्ण रखते हुए पिता के अधिकार पर ध्यान नहीं दिया, यहां तक कि मिलने के लिए भी जो अन्यथा शिशु की देखभाल और पालन-पोषण के लिए आवश्यक था । उन्होंने **यशिता साहू** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[1], **गौरव नागपाल** बनाम **सुमेधा नागपाल**[2] और **रितिका शरण** बनाम **सुजॉय घोष**[3] वाले मामलों का अवलंब लिया और निवेदन किया कि शिशु की अभिरक्षा रखने के लिए पिता के अधिकार पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

3. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी/पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि निचले न्यायालय का आदेश गुणागुण है और यह कथन किया कि केवल मां शिशु की समुचित देखभाल कर सकती है । उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि चूंकि शिशु गंभीर बीमारी से पीड़ित था, इसलिए, शिशु की देखभाल के लिए माता की देखभाल और उसका सहचर्य आवश्यक था और पिता को निचले न्यायालय के निदेशानुसार मिलने का अधिकार मिला हुआ है ।

---

[1] (2020) 3 एस. सी. सी. 67.

[2] (2009) 1 एस. सी. सी. 42.

[3] 2020 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 878.

4. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तृत रूप से सुना । अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य और दस्तावेजों का परिशीलन किया ।

5. जन्म से ही शिशु के गंभीर रोग से पीड़ित होने का स्पष्ट पता चलता है । पिता/अपीलार्थी और माता/प्रत्यर्थी दोनों के कथनों का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि शिशु का उपचार कराने के लिए माता-पिता दोनों ने अलग-अलग विशेषज्ञ चिकित्सकों/विशेषज्ञों से समय-समय पर मुलाकात की, लेकिन अंततः थोड़ा सुधार हुआ । माता और पिता दोनों के कथनों के अनुसार, शिशु स्पाइना बिफिडा से पीड़ित है, जिसमें पेशाब करने के लिए उसे बाहरी सहारे अर्थात् पेट को दबाने की जरूरत होती है और उसे चलने के लिए भी सहारे की जरूरत होती है । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों का दावा है कि वे अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करेंगे और शिशु की बेहतर सेवा करेंगे ।

6. शिशु की अभिरक्षा के मामलों में समाज के मापदण्ड मूल्य विरोधाभासों से भरे हुए हैं । तथापि, न्यायालयों ने शिशु के सर्वोपरि कल्याण के विवाद्यक की बारीकियों को कभी नहीं छोड़ा है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने बार-बार दोहराया है कि शिशु का कल्याण सर्वोपरि विचारणीय होगा । **तेजस्विनी गौड़ और अन्य** बनाम **शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य**[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि शिशु की अभिरक्षा के मामलों का विनिश्चय करते समय, न्यायालय माता-पिता या अभिभावकों के विधिक अधिकार से बाध्य नहीं होते हैं । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि विशेष कानून के उपबंध माता-पिता या अभिभावकों के अधिकारों को नियंत्रित करते हैं, लेकिन अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा से संबंधित मामलों में अप्राप्तवय शिशु का कल्याण सर्वोपरि विचारणीय है । इसलिए, सर्वोपरि विचार शिशु का हित और कल्याण होना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में **नील रतन कुंडू** बनाम **अभिजीत कुंडू**[2] वाले मामले में दिए गए दृष्टिकोण को दोहराया, जिसमें न्यायालय ने

---

[1] (2019) 7 एस. सी. सी. 42.

[2] (2008) 9 एस. सी. सी. 413.

अभिनिर्धारित किया था कि शिशु के कल्याण को सर्वोपरि माना जाना चाहिए और शिशु के सामान्य आराम, संतुष्टि, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित महत्व दिया जाना चाहिए ।

7. उच्चतम न्यायालय ने **एम. के. हरि गोविंदन** बनाम **ए. आर. राजाराम**[1] वाले मामले में भी इस मत को दोहराया कि शिशु की अभिरक्षा के मामलों को "मानवीय स्पर्श" के संदर्भ के बिना पूर्व निर्णयों, दस्तावेजों या मौखिक साक्ष्य के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । यह अभिनिर्धारित किया है कि "मानवीय स्पर्श" अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्राथमिक है क्योंकि अन्य सामग्री या तो पक्षकारों द्वारा स्वयं या वाद के काउंसेल की सलाह पर उनकी सुविधा के अनुसार बनाई जा सकती है । इसके अतिरिक्त **गौरव नागपाल** बनाम **सुमेधा नागपाल**[2] वाले मामले में, पैरा 30, 32, 36, 37, 40, 50 और 51 में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :–

> "30. कभी-कभी, अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की ईप्सा की जाती है । ऐसे मामलों में भी, न्यायालय द्वारा शिशु के कल्याण पर सर्वोपरि ध्यान दिया जाना चाहिए ।
>
> 32. मैक ग्राथ, रे [(1893) 1 अध्याय 143 = 62 एल. जे. अध्याय 208] वाले मामले में, विद्वान् न्यायाधीश लिंडले ने यह निष्कर्ष निकाला है कि न्यायालय के विचार के लिए प्रमुख मामला शिशु का कल्याण है । लेकिन शिशु के कल्याण को केवल पैसे या मात्र शारीरिक आराम से नहीं मापा जाना चाहिए । 'कल्याण' शब्द को इसके व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए । शिशु के नैतिक या धार्मिक कल्याण के साथ-साथ उसकी शारीरिक कल्याण पर भी विचार किया जाना चाहिए और न ही स्नेह के बंधन की उपेक्षा की जा सकती है ।

---

[1] 2003 (36) ऑनलाइन मद्रास 48 = ए. आई. आर. 2003 मद्रास 315.

[2] (2009) 1 एस. सी. सी. 42.

36. संरक्षकता अधिनियम, अभिभावकों और प्रतिपाल्य से संबंधित विधि को समेकित और संशोधित करता है । उक्त अधिनियम की धारा 4 में "अप्राप्तवय" को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जिसने वयस्कता की आयु प्राप्त नहीं की है । "संरक्षक" का अर्थ है वह व्यक्ति जो अप्राप्तवय के शरीर या उसकी संपत्ति या उसके शरीर और संपत्ति दोनों की देखभाल करता है । "प्रतिपाल्य" की परिभाषा अप्राप्तवय के रूप में की गई है जिसके शरीर या संपत्ति दोनों के लिए संरक्षक है । अध्याय ॥ (संरक्षक अधिनियम की धारा 5 से 19) अभिभावकों की नियुक्ति और घोषणा से संबंधित है । इसकी धारा 7 'संरकक्षता के बारे में आदेश देने की न्यायालय की शक्ति' से संबंधित है और इसे इस प्रकार से परिशीलन किया जा सकता है –

> "7. संरक्षकता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति – (1) जहां कि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि अप्राप्तवय का इसमें कल्याण है कि –
>
> (क) उसके शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने वाला, अथवा
>
> (ख) किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षक घोषित करने वाला, आदेश किया जाए, वहां न्यायालय तद्नुसार आदेश कर सकेगा ।
>
> (2) इस धारा के अधीन दिए गए आदेश से यह विवक्षित होगा कि कोई भी संरक्षक, जो विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, हटा दिया गया है ।
>
> (3) जहां कि कोई संरक्षक, विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने का इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक

नहीं किया जाएगा जब तक पूर्वोक्त नियुक्त/घोषित संरक्षक की शक्तियां इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन परिवर्तित न हो गई हों ।

37. संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 में संरक्षकता के संबंध में आदेश के लिए आवेदन करने के हकदार व्यक्तियों की सूची दी गई है । धारा 9 अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को संरक्षकता के लिए आवेदन पर विचार करने में समर्थ बनाती है । धारा 10 से 16 न्यायालय की प्रक्रिया और शक्तियों से संबंधित हैं । धारा 17 एक अन्य महत्वपूर्ण उपबंध है और इसे पुनः उद्धृत किया जा सकता है –

"17. संरक्षक नियुक्त करने में न्यायालय द्‌वारा विचारणीय बातें – (1) अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित करने में इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय उस विधि से संगत, जिसके अप्राप्तवय अध्यधीन है, उस बात से मार्गदर्शित होगा, जो उन परिस्थितियों में अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्रतीत हो ।

(2) यह विचार करने में कि अप्राप्तवय के लिए क्या कल्याणकर होगा, न्यायालय अप्राप्तवय की आयु, लिंग और धर्म, प्रस्थापित, संरक्षक शील और सामर्थ्य तथा अप्राप्तवय से रक्त संबंध में उसकी निकटता, मृत जनक की इच्छाओं को, यदि कोई हों और अप्राप्तवय से या उसकी सम्पत्ति से प्रस्थापित संरक्षक के किसी वर्तमान या पूर्वतम संबंधों को ध्यान में रखेगा ।

(3) यदि अप्राप्तवय इतनी आयु का है कि वह बुद्धिमत्तापूर्ण अधिमान कर सकता है तो न्यायालय उस अधिमान पर विचार कर सकेगा ।

* * * * *

(5) न्यायालय किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध संरक्षक नियुक्त या घोषित नहीं करेगा ।"

40. धारा 6 यह अभिनिर्धारित करती है कि किसे नैसर्गिक संरक्षक कहा जा सकता है । इसे इस प्रकार से पढ़ा जाए –

> "6. हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक – हिन्दू अप्राप्तवय के शरीर के बारे में और (अविभक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर) उसकी सम्पत्ति के बारे में भी, निम्नलिखित हैं –
>
> (क) किसी लड़के या अविवाहिता लड़की की दशा में – पिता और उसके पश्चात् माता परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी ;
>
> (ख) अधर्मज लड़के या अधर्मज अविवाहिता लड़की की दशा में – माता और उसके पश्चात् पिता ;
>
> (ग) विवाहिता लड़की की दशा में – पति :
>
> परन्तु कोई भी व्यक्ति यदि –
>
> वह हिन्दू नहीं रह गया है : या
>
> वह वानप्रस्थ या यति या सन्यासी होकर संसार को पूर्णत: और अन्तिम रूप से त्याग चुका है ।
>
> तो इस धारा के उपबंधों के अधीन अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य करने का हकदार न होगा ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस धारा में "पिता" और "माता" पदों के अंतर्गत सौतेला पिता और सौतेली माता नहीं आते ।

50. जब न्यायालय को माता-पिता द्वारा की गई विरोधी मागों का सामना करना पड़ता है, तो उसे हर बार मांगों को न्यायोचित ठहराना पड़ता है । न्यायालय को न केवल विधि-सम्मत आधार पर विवाद्यक को देखना होता है, बल्कि ऐसे मामलों में उन विवाद्यकों का विनिश्चय करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण भी

सुसंगत होते हैं । तब न्यायालय पक्षकार क्या कहते हैं इन बातों पर बल नहीं देता, उसे ऐसे अधिकारिता का प्रयोग करना होता है जिसका उद्देश्य अप्राप्तवय का कल्याण हो । जैसा कि हाल ही में **मौसमी मोइत्रा गांगुली** (उपरोक्त) वाले मामले में पाया गया, न्यायालय को शिशु की सामान्य संतुष्टि, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित महत्व देना होता है, लेकिन भौतिक सुख-सुविधाओं के अतिरिक्त, नैतिक और नीतिपरक मूल्यों पर भी ध्यान देना होता है । वे समान हैं, यदि दूसरों से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं ।

51. अधिनियम की धारा 13 में प्रयुक्त 'कल्याण' शब्द का अक्षरश: अर्थ लगाया जाना चाहिए तथा इसे इसके व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए । न्यायालय को शिशु के नैतिक तथा नीतिपरक कल्याण के साथ-साथ उसके शारीरिक स्वास्थ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए । यद्यपि माता-पिता या अभिभावकों के अधिकारों को नियंत्रित करने वाले विशेष कानूनों के उपबंधों को ध्यान में रखा जा सकता है, लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है जो न्यायालय को ऐसे मामलों में अपने पैरेस पैट्रिया अधिकारिता का प्रयोग करने से रोक सके ।

इसलिए शिशु का सर्वोपरि विचार ही निर्णायक कारक होगा ।"

8. इस मामले में पक्षकारों के कथन पर लौटते हैं, पिता/अपीलार्थी के अनुसार, उसका कथन है कि विवाद तब उद्भूत हुआ जब वह मैनपाट में पदस्थ था और मैनपाट एक सुदूर क्षेत्र होने के कारण, वहां उपचार की सुविधा उपलब्ध नहीं थी । उसने कथन किया कि जब वह शिशु के साथ रहता था, तो वह प्रातःकाल शिशु को पेशाब कराने में मदद करता था, उसे तैयार करता था और उसके पश्चात् वह अपने कार्य पर जाया करता था । इसकी तुलना में माता/प्रत्यर्थी जो कि नौकरी करती है, अपने कार्यस्थल पर शिशु को अपने साथ ले जाती थी । उसने यह भी स्वीकार किया कि आज तक माता शिक्षक की नौकरी करते हुए शिशु को अपने साथ ले जाती थी । माता के कथन से दर्शित होता है कि वह लगभग

30,000/- रुपए कमाती है और इस तथ्य से तनाव में है कि चूंकि शिशु की देखभाल करने वाला कोई नहीं था, इसलिए वह उसे अपने साथ ले जाती थी । इसके अतिरिक्त उसके कथन से प्रदर्शित होता है कि प्रारंभ में जब शिशु को जन्म से ही किसी बीमारी से पीड़ित पाया गया, तो माता और पिता दोनों ने अलग-अलग चिकित्सकों से मुलाकात की और शिशु को स्पाइना बिफिडा से पीड़ित पाया गया । जब वह धरसिवा के किसी विद्यालय में पदस्थ थी, तब उसने शिशु के उपचार के लिए पिता द्वारा किए गए किसी भी प्रयास का विरोध नहीं किया । उसने इसके अतिरिक्त कथन में माता ने दलील ही है कि शिशु अस्वस्थ है और जब कुछ सुधार होगा तो उसे चिकित्सालय में भर्ती कराया जाएगा । इसके अतिरिक्त माता ने दलील दी है कि अपीलार्थी/पिता शिशु की देखभाल कर सकते हैं लेकिन शिशु को बेहतर देखभाल के लिए माता की संगति की आवश्यकता होगी । यह कथन किया गया है ऐसा लगता है कि मूत्र निकालने के लिए पेट को दबाना पड़ता है, इसके अतिरिक्त कि वह शिशु का इलाज कराने के लिए अपीलार्थी/पिता के साथ कहीं भी जाने के लिए तैयार और इच्छुक है और साथ जाने से इनकार नहीं करेगी ।

9. विद्यमान कारकों से दर्शित होता है कि पिता खंड शिक्षा अधिकारी के उच्च पद पर पदस्थ है, जिसे क्षेत्र में कार्य का निर्वाह करना पड़ता है, यद्यपि माता भी, अध्यापन के कार्य में है और शिशु की देखभाल करने के लिए वह शिशु को अपने साथ विद्यालय भी ले जाती है, इसलिए, पिता भी एक शुभचिंतक है और शिशु की देखभाल करना चाहता है, लेकिन शिशु की देखभाल करने के लिए माता द्वारा की जाने वाली देखभाल का स्तर अधिक है, विशेष रूप उस बीमारी की प्रकृति पर विचार करने पर जिससे शिशु जन्म से पीड़ित है । माता द्वारा की जाने वाली देखभाल और कार्य की प्रकृति अधिक महत्वपूर्ण है । यह स्पष्ट है कि जब पिता एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर क्षेत्र में कार्य कर रहा है, तो यह कैसे आशा की जा सकती है कि पिता शिशु को शारीरिक सहायता देने में समर्थ होगा ? दूसरी ओर, माता कुछ उत्साह के साथ बीमार शिशु को अधिक शारीरिक सहायता देने में समर्थ होगी । इसलिए,

कुटुंब न्यायालय का यह निष्कर्ष कि शिशु का कल्याण माता की अभिरक्षा में बेहतर स्तर पर होगा, न्यायोचित प्रतीत होता है, जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

10. अब पिता को शिशु से मिलने के अधिकारों पर वापस आते हैं, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने आदेश दिया है कि माता/पत्नी को नोटिस देने के पश्चात् पिता कुछ समय के लिए शिशु के साथ रह सकता है, जिसे लागू करना अव्यवहारिक प्रतीत होता है । कुटुंब न्यायालय द्वारा बिना किसी विशेष दिशा-निर्देश या निदेश के मिलने का अधिकार अस्पष्ट होगा । मिलने के अधिकार पर उच्चतम न्यायालय ने **यशिता साहू** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में विचार व्यक्त किया है जिसमें इसी प्रकार के विवाद्यक पर न्याय निर्णयन करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला था कि अभिरक्षा की लड़ाई में शिशु ही सदैव पीड़ित होता है । यह भी अभिनिर्धारित किया था कि दोनों पति-पत्नी के बीच दंभ और बढ़ती उग्र लड़ाइयों और मुकदमों में, माता-पिता जो अन्यथा अपने शिशु से प्यार करते हैं, एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जैसे कि दूसरा पति या पत्नी खलनायक है और उस शिशु की अभिरक्षा पाने का अधिकार मांगता है । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कम उम्र के शिशु को माता-पिता दोनों के प्यार, स्नेह, साथ और सुरक्षा की अपेक्षा होती है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह शिशु की नैसर्गिक आवश्यकता है जो उसका मूल मानव अधिकार है, सिर्फ इसलिए कि माता-पिता एक दूसरे के साथ लड़ाई में हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि शिशु को दोनों में से किसी एक की देखभाल, स्नेह, सुरक्षा, प्यार या सुरक्षा से वंचित कर दिया जाना चाहिए । यह भी अभिनिर्धारित किया कि शिशु कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसे एक माता-पिता से दूसरे माता-पिता के पास फेंका जा सके और हर अलगाव के पश्चात्, हर पुनर्मिलन का शिशु पर अभिघात और मनोदैहिक प्रभाव हो सकता है ।

11. उपर्युक्त मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि एक अभिभावक को अभिरक्षा दिए जाने के

---

[1] (2020) 3 एस. सी. सी. 67.

पश्चात् भी, दूसरे अभिभावक के पास शिशु से मिलने का पर्याप्त अधिकार होना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि शिशु दूसरे अभिभावक के संपर्क में रहे और दोनों अभिभावकों में से किसी एक के साथ से उसका सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक संपर्क न टूटे । मात्र गंभीर परिस्थितियों में ही एक अभिभावक को शिशु से मिलने से वंचित किया जाना चाहिए । इस मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर, ऐसी कोई गंभीर परिस्थिति नहीं दर्शित होती है, जिसके अधीन एक अभिभावक को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए शिशु से मिलने से वंचित किया जा सके । अभिलेख पर जो साक्ष्य हैं, उनसे दर्शित होता है कि यद्यपि पति-पत्नी दोनों अलग-अलग रह रहे हैं और शिशु की अभिरक्षा पत्नी के पास है, लेकिन पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध कोई भी अभिकथन नहीं किया गया है, इसलिए, पति-पत्नी दोनों के अलग-अलग रहने के कारण स्पष्ट नहीं हैं या सामने नहीं आए हैं । उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त वाले मामले में यह भी निष्कर्ष निकाला कि भारत में "मिलने के अधिकार की" अवधारणा पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है । अधिकांश न्यायालय एक पति या पत्नी को अभिरक्षा देते समय दूसरे पति या पत्नी को मिलने का अधिकार प्रदान करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं करते हैं । यह अभिनिर्धारित किया कि शिशु को माता-पिता दोनों का प्यार और स्नेह पाने का मानव अधिकार है और न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए आदेश पारित करना चाहिए कि शिशु अपने माता-पिता में से किसी भी एक के प्यार, स्नेह और साथ से पूरी तरह वंचित न रहे ।

12. न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि "मिलने का अधिकार" के अलावा, "संपर्क अधिकार" भी शिशु के विकास के लिए महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां माता-पिता दोनों अलग-अलग स्थानों पर रहते हैं । आधुनिक युग में संपर्क अधिकार की अवधारणा टेलीफोन, ई-मेल या वास्तव में संपर्क की सबसे उत्तम प्रणाली यदि पक्षकारों के बीच उपलब्ध हो तो वीडियो कॉलिंग होनी चाहिए । यह पाया गया कि इंटरनेट की बढ़ती उपलब्धता के साथ, और शिशु की अभिरक्षा के विवाद्यक से निपटने वाले न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए

कि जिस माता-पिता को शिशु की अभिरक्षा से इनकार किया गया है, वह अपने शिशु से जितनी बार संभव हो सके बात करने में समर्थ होना चाहिए । यह अभिनिर्धारित किया गया कि संसूचना शिशु और अभिरक्षा से इनकार किए गए माता-पिता के बीच बंधन को कायम रखने और सुधारने में मदद करेगा । यदि वह बंधन कायम रहता है, तो शिशु को छुट्टियों या अवकाश के दौरान एक घर से दूसरे घर में जाने में कोई कठिनाई नहीं होगी । इसका उद्देश्य यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय, शिशु को दोनों माता-पिता के साथ एक खुशहाल घर नहीं दे सकते हैं, तो शिशु को एक-एक करके दोनों माता-पिता के साथ दो खुशहाल घरों का लाभ उठाने दें ।

13. हाल ही में दिए गए निर्णय **रितिका शरण** बनाम **सुजॉय घोष**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संतुलन बनाए रखा जाना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसी स्थिति में जब माता-पिता के बीच लड़ाई हो, तो शिशु में सुरक्षा की भावना हो । शिशु के हितों की सबसे अच्छी सेवा यह सुनिश्चित करके की जा सकती है कि उसके पालन-पोषण में दोनों माता-पिता की उपस्थिति हो । इसलिए, **यशिता साहू** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में, और **रितिका शरण** बनाम **सुजॉय घोष**[1] मामले में प्रकाशित सिद्धांतों का पालन करते हुए, हम माता-पिता को मिलने और संपर्क का अधिकार देने की सुविधा प्रदान करने का आदेश देते हैं । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के लिए पिता और माता के रूप में निम्नलिखित व्यवस्था की जाएगी :–

- अपीलार्थी/पिता प्रत्येक शनिवार और रविवार को एक घंटे और अन्य दिनों में 5-10 मिनट के लिए उपयुक्त वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग मंच पर शिशु के साथ बातचीत कर सकेंगे ।

- अपीलार्थी/पिता और प्रत्यर्थी/माता दोनों को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की सुविधा के लिए स्मार्ट फोन उपाप्त करना होगा, जिसमें परस्पर वीडियो कॉलिंग की सुविधा होगी ।

---

[1] 2020 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 878.

[2] (2020) 3 एस. सी. सी. 67.

• 2 सप्ताह से अधिक की लंबी छुट्टियों/अवकाश के दौरान शिशु को 7 दिनों की अवधि के लिए पिता के साथ रहने की अनुमति होगी और माता भी उनके साथ जा सकती है ।

• यह अवधि पिता द्वारा माता को उचित सूचना देने के पश्चात् तय की जाएगी और वह शिशु को पूर्वोक्त अवधि के लिए पिता के साथ जाने की अनुज्ञा देगी और माता भी उनके साथ जा सकती है ।

• प्रत्येक माह विशेषतः दूसरे शनिवार और रविवार को माता शिशु को उसके पिता से मिलने की अनुमति देगी अथवा पिता शिशु को अपने साथ ले जा सकता है और माता भी साथ जा सकती है तथा माता उस दिन शाम को उसे वहां वापस छोड़ सकती है ।

दशहरा, दीवाली, होली जैसे त्यौहारों के दौरान, पिता, माता के स्थान पर शिशु के साथ सम्मिलित हो सकता है और त्यौहार के दिन माता के साथ, शिशु के साथ बिता सकता है ।

14. पूर्वोक्त निदेश के साथ, अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अम./क.

एस. सी. सोनी

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

[2012 की रिट याचिका (सिविल) सं. 423]

तारीख 23 फरवरी, 2022

न्यायमूर्ति पार्थ प्रतीक साहू

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1966 का नियम 10] – याची के विरुद्ध लापरवाही और आर्थिक अनियमितता के लिए कारण बताओ नोटिस जारी होना – याची द्वारा समयावधि के भीतर उसका उत्तर फाइल करना – विभाग द्वारा मामले का निपटारा करने में विलम्ब करना – मामला लम्बित रहने के दौरान याची के समान रैंक के अधिकारियों की पदोन्नति के लिए डीपीसी गठित होना – याची का नाम लिफाफा बन्द होना जिसमें याची की भी पदोन्नति होना – याची द्वारा डीपीसी की तारीख से पदोन्नति सम्बन्धी लाभों का दावा करना – विभाग द्वारा इनकार करना और लिफाफा खुलने की तारीख से लाभों का संदाय किया जाना – यदि किसी कर्मचारी के विरुद्ध लापरवाही और आर्थिक अनियमितता के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है और मामला लम्बित रहने के दौरान उसी के रैंक के अन्य कर्मचारियों की प्रोन्नति के लिए डीपीसी गठित होती है और डीपीसी की बैठक में उस कर्मचारी की प्रोन्नति के लिए नाम भी लिफाफा बन्द में रखा जाता है तो यदि वह कर्मचारी सभी आरोपों से दोषमुक्त हो जाता है तो उसे प्रोन्नति सम्बन्धी लाभ उसी तारीख से प्राप्त होंगे जिस तारीख को अन्यों के साथ उसका नाम लिफाफा बन्द में रखा गया था न कि लिफाफा खोलने की तारीख से ।

वर्तमान मामले में, वर्ष 2002 में याची वन रेंज अधिकारी के पद पर कार्यरत था । तारीख 3 अप्रैल, 2002 को उसे कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसका उत्तर उसने तारीख 15 नवंबर, 2002 को

दिया था । विभाग ने सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति हेतु हकदार वन रेंज अधिकारियों के नामों पर विचार करने हेतु विभागीय पदोन्नति समिति गठित किया । याची का नाम भी पदोन्नति हेतु विचाराधीन था, किन्तु उसके कर्तव्यों के निर्वहन में अनियमितताओं और लापरवाही के संबंध में जारी कारण बताओ नोटिस को ध्यान में रखते हुए, याची का नाम मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था । तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को विभागीय पदोन्नति समिति की अनुशंसा के आधार पर, याची के साथ विचार किए गए वन रेंज अधिकारियों के पक्ष में पदोन्नति का आदेश तारीख 4 नवंबर, 2004 को जारी किया गया था । विभाग ने याची द्वारा कारण बताओ नोटिस के उत्तर को संतोषप्रद मानते हुए, तारीख 20 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा याची के विरुद्ध प्रारंभ की गई कार्यवाही बंद कर दी थी । विभागीय पदोन्नति समिति ने मुहरबंद लिफाफा खोला और याची को पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाया । इसके बाद, याची को विभाग द्वारा तारीख 27 जुलाई, 2007 को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नत किया गया । डीपीसी ने यह देखा कि पदोन्नति आदेश में कहीं भी उल्लेख नहीं है कि याची को पिछली तिथि अर्थात् तारीख 4 नवंबर, 2004 से पदोन्नत किया गया है । जिस तिथि को अन्य रेंज अधिकारियों के पक्ष में पदोन्नति आदेश जारी किया गया था, जिनके नाम तारीख 1 अक्तूबर, 2004 की डीपीसी में पदोन्नति के लिए विचार किए गए थे, याची ने संबंधित अधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन किया जो अनिर्णीत रहा । उक्त से आक्षेपित होकर, याची ने इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित अनुतोषों के लिए रिट याचिका फाइल की है – (i) प्रत्यर्थी को यह निदेश दिया जाए कि वे याची को तारीख 24 जुलाई, 2007 के बजाय तारीख 4 नवंबर, 2004 से एसीएफ/एसडीओ (एफ) के पद पर पदोन्नति प्रदान करें और प्रत्यर्थियों को मौद्रिक लाभ सहित सभी पारिणामिक लाभों को देने का भी निदेश दिया जाए । (ii) तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को आयोजित डीपीसी की बैठक से संबंधित संपूर्ण अभिलेख मंगाया जाए जिसमें याची का मामला मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था । (iii) कोई अन्य अनुतोष जिसे यह माननीय न्यायालय उचित समझे ।" न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निर्विवाद तथ्य यह है कि जब याची वन संरक्षक,

सरगुजा वृत्त, सरगुजा के अधीन वन परिक्षेत्र अधिकारी के पद पर पदस्थ था, तब उसे विभाग द्वारा प्रतिकरात्मक अनियमितता करने के कारण 1,23,049/- रुपए का अपव्यय करने के लिए तारीख 3 अप्रैल, 2002 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था । याची को कारण बताओ नोटिस इस आशय से दिया गया कि क्यों न उक्त राशि याची से वसूल की जाए और क्यों न याची की तीन वार्षिक वेतन वृद्धियां गैर-संचयी प्रभाव से रोकी जाएं । याची ने कारण बताओ नोटिस का उत्तर तारीख 15 नवंबर, 2002 को वन संरक्षक, बालाघाट सर्किल, मध्य प्रदेश को प्रस्तुत किया । यह भी उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश राज्य के पुनर्गठन के बाद भी बालाघाट सर्किल मध्य प्रदेश के प्रादेशिक अधिकारिता में रहा । याची द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया गया और कारण बताओ नोटिस तारीख 20 फरवरी, 2007 तक विचार और विनिश्चय के लिए लंबित रहा । वन संरक्षक, रायपुर द्वारा पारित आदेश के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि कारण बताओ नोटिस का उत्तर, मुख्य वन संरक्षक, रायपुर के कार्यालय को भेज दिया गया था, जिन्होंने याची की ओर से नोटिस और उत्तर पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित करते हुए आदेश पारित किया कि याची द्वारा 1,23,049/- रुपए की अपव्यय में संलिप्तता साबित नहीं हो सकी है । इसी दौरान, तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए योग्य और विचाराधीन क्षेत्र के भीतर वन परिक्षेत्र अधिकारियों के नामों की सिफारिश के आधार पर, तारीख 4 नवंबर, 2004 को पदोन्नति आदेश जारी किया गया था । याची का नाम भी सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए विचाराधीन था, लेकिन तारीख 3 फरवरी, 2002 को कारण बताओ नोटिस जारी होने को कारण याची के संबंध में डीपीसी की सिफारिश को एक मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था, जिसे कारण बताओ नोटिस के परिणाम के बाद खोला जाना था । तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को आयोजित डीपीसी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया विवादित नहीं है, बल्कि इसे प्रत्यर्थियों ने रिट याचिका के अपने उत्तर के पैरा 4 में स्वीकार किया है । प्रत्यर्थियों ने यह भी स्वीकार किया है कि सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए वन रेंज प्राधिकारी

की हकदारिता पर विचार करने की तिथि पर लंबित कारण बताओ नोटिस की कार्यवाही बाद में समाप्त कर दी गई थी, इसलिए, याची को तारीख 24 जुलाई, 2007 को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति प्रदान की गई थी । इस न्यायालय द्वारा विचारणीय विवाद्यक यह है कि क्या सभी अभिभोगों से मुक्त होने या विभागीय कार्यवाही बंद होने के पश्चात् याची, जो डीपीसी की बैठक की तारीख अर्थात् 1 अक्तूबर, 2004 को पदोन्नति के लिए विचाराधीन था, लेकिन कारण बताओ नोटिस जारी होने के कारण उसकी सिफारिश को मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था, उस तारीख से पदोन्नति के लिए हकदार हैं, जब अन्य समान श्रेणी वाले कर्मचारियों के पक्ष में पदोन्नति आदेश जारी किया गया था, जिनके नामों पर डीपीसी की तारीख 1 अक्तूबर, 2004 की बैठक में विचार किया गया था । पदोन्नति के मामलों में मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह केवल तभी लागू किया जाना चाहिए जब किसी आपराधिक कार्यवाही में आरोप पत्र कर्मचारी के विरुद्ध जारी किया जाता है । आरोप पत्र/मेमो जारी होने के पश्चात् मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए । इस मामले में, याची को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उससे यह स्पष्टीकरण मांगा गया था कि क्यों न उससे अपव्यय की राशि वसूल की जाए और क्यों न गैर-संचयी प्रभाव से उसकी तीन वार्षिक वेतन वृद्धि रोकी जाए । छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1966 (संक्षेप में 'नियम, 1966') के नियम 10 के अधीन सरकारी कर्मचारी पर मामूली दंड लगाने की कार्रवाई का उपबंध है । किसी ऐसे कर्मचारी की पदोन्नति के लिए मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया अपनाना जो पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र के अधीन है लेकिन उसके विरुद्ध विभागीय जांच लंबित है, तो विभागीय जांच पूर्ण होने और आरोपों से मुक्त होने के तुरंत बाद, ऐसे कर्मचारी की पदोन्नति के लिए उम्मीदवारी पर विचार किया जाना चाहिए, जो कि प्रत्यर्थियों द्वारा ठीक ही किया गया है । याची को आरोपों से मुक्त कर दिया गया है और उसके विरुद्ध लंबित मामला तारीख 20 फरवरी, 2007 के आदेश

के अधीन बंद कर दिया गया है । इसके पश्चात्, याची को तारीख 24 जुलाई, 2007 को पदोन्नत किया गया । इस रिट याचिका में याची द्वारा यह शिकायत की गई है कि उसे उस तारीख से पदोन्नति नहीं दी गई जब अन्य वन रेंज अधिकारियों को आदेश तारीख 4 नवंबर, 2004 के अधीन पदोन्नत किया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त वर्णित दो निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि कर्मचारी का नाम डीपीसी द्वारा मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था और ऐसे कर्मचारी को दोषमुक्त करने के पश्चात् उसे खोलने पर उसे पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाया गया, तो ऐसे कर्मचारी को उस तारीख से पदोन्नत किया जाना चाहिए, जिस तिथि को उससे कनिष्ठ या डीपीसी द्वारा विचार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले अन्य कर्मचारियों को पदोन्नत किया गया था । वर्तमान मामले में, डीपीसी की सिफारिश के आधार पर, वन रेंज प्राधिकारी जो तारीख 4 नवंबर, 2004 के आदेश द्वारा पदोन्नत किया गया था । इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, याची भी तारीख 4 नवंबर, 2004 से सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नत होने का हकदार है । तदनुसार आदेश दिया जाता है । वर्तमान मामले में, कारण बताओ नोटिस प्राप्त होने के पश्चात्, याची ने कुछ माह के भीतर उत्तर प्रस्तुत किया था लेकिन कारण बताओ नोटिस और उत्तर, वर्ष 2002 से 2007 तक यानि लगभग चार वर्षों तक लंबित रहा, जिसमें याची को अंततः अपव्यय के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराते हुए, मामला बंद कर दिया गया था और कार्यवाही समाप्त कर दी गई थी । इस न्यायालय की राय में, प्रत्यर्थियों ने तारीख 24 जुलाई, 2007 को पदोन्नति का आदेश पारित करते समय इस बात पर विचार नहीं किया कि तारीख 24 जुलाई, 2007 का आदेश डीपीसी द्वारा तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को रखे गए मुहरबंद लिफाफे के अनुसरण में है । यदि यह स्थिति है, तो याची पिछली तारीख से पदोन्नति के लिए हकदार था जब उसका नाम डीपीसी से पहले विचाराधीन था और अन्य कर्मचारी जिन पर उसी डीपीसी द्वारा विचार किया गया और उन्हें तारीख 4 नवंबर, 2004 को पदोन्नत किया गया । (पैरा 6, 7, 8, 10, 12, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 13 एस. सी. सी. 94 : **गुरपाल सिंह** बनाम **राजस्थान उच्च न्यायालय** ;	3,11
[1998]	(1998) 3 एस. सी. सी. 394 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **डा. सुधा सलहान (श्रीमती)** ;	14
[1991]	(1991) 4 एस. सी. सी. 109 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **के. वी. जानकीरमन और अन्य ।**	3

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2012 की रिट याचिका (सिविल) सं. 423.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री विनोद देशमुख, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री समीर ओरांव अधिवक्ता

न्यायमूर्ति पार्थ प्रतीक साहू – वर्तमान याचिका में संक्षिप्त प्रश्न यह अंतर्वलित है कि क्या याची जिसका नाम विभागीय पदोन्नति समिति में पदोन्नति के लिए रेंज अधिकारियों की उम्मीदवारी पर विचार करते समय उसे कारण बताओ नोटिस जारी करने के कारण मुहरबंद रखा गया था, तथा तत्पश्चात् याची के विरुद्ध कार्यवाही बंद कर दी गई थी, वह तारीख 1 अक्तूबर, 2004 की बैठक में विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा अन्य कर्मचारियों के पक्ष में जारी पदोन्नति आदेश की तारीख से सभी पारिणामिक फायदों को पाने का हकदार है ।

2. वर्ष 2002 में याची वन रेंज अधिकारी के पद पर कार्यरत था । तारीख 3 अप्रैल, 2002 को उसे कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसका उत्तर उसने तारीख 15 नवंबर, 2002 को दिया था । विभाग ने सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति हेतु हकदार वन रेंज अधिकारियों के नामों पर विचार करने हेतु विभागीय पदोन्नति समिति गठित किया । याची का नाम भी पदोन्नति हेतु विचाराधीन था, किन्तु उसके कर्तव्यों के निर्वहन में अनियमितताओं और लापरवाही के संबंध में

जारी कारण बताओ नोटिस को ध्यान में रखते हुए, याची का नाम मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था । तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को विभागीय पदोन्नति समिति की अनुशंसा के आधार पर, याची के साथ विचार किए गए वन रेंज अधिकारियों के पक्ष में पदोन्नति का आदेश तारीख 4 नवंबर, 2004 को जारी किया गया था । विभाग ने याची द्वारा कारण बताओ नोटिस के उत्तर को संतोषप्रद मानते हुए, तारीख 20 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा याची के विरुद्ध प्रारंभ की गई कार्यवाही बंद कर दी थी । विभागीय पदोन्नति समिति ने मुहरबंद लिफाफा खोला और याची को पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाया । इसके बाद, याची को विभाग द्वारा तारीख 27 जुलाई, 2007 को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नत किया गया । डीपीसी ने यह देखा कि पदोन्नति आदेश में कहीं भी उल्लेख नहीं है कि याची को पिछली तिथि अर्थात् तारीख 4 नवंबर, 2004 से पदोन्नत किया गया है । जिस तिथि को वन रेंज अधिकारियों के पक्ष में पदोन्नति आदेश जारी किया गया था, जिनके नाम तारीख 1 अक्तूबर, 2004 की डीपीसी में पदोन्नति के लिए विचार किए गए थे, याची ने संबंधित अधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन किया जो अनिर्णीत रहा । उक्त से आक्षेपित होकर, याची ने इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित अनुतोषों के लिए रिट याचिका फाइल की है :-

> "(i) प्रत्यर्थी को यह निदेश दिया जाए कि वे याची को तारीख 24 जुलाई, 2007 के बजाय तारीख 4 नवंबर, 2004 से एसीएफ/एसडीओ (एफ) के पद पर पदोन्नति प्रदान करें और प्रत्यर्थियों को मौद्रिक लाभ सहित सभी पारिणामिक लाभों को देने का भी निदेश दिया जाए ।
>
> (ii) तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को आयोजित डीपीसी की बैठक से संबंधित संपूर्ण अभिलेख मंगाया जाए जिसमें याची का मामला मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था ।
>
> (iii) कोई अन्य अनुतोष जिसे यह माननीय न्यायालय उचित समझे ।"

3. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया है कि तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को डीपीसी की बैठक में याची के नाम पर विचार करने की तिथि पर, उस केवल कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था जिसमें कारण बताओ नोटिस में उल्लेखित अभिकथनों पर स्पष्टीकरण मांगा गया था, जिस पर याची ने विस्तार से स्पष्टीकरण दिया था । ऐसा नहीं है कि याची को विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए आरोप पत्र दिया गया था । इसलिए, पदोन्नति के लिए वन रेंज अधिकारियों के नाम पर विचार करने के लिए डीपीसी की बैठक की तिथि पर भी प्रत्यर्थी अधिकारियों के पास याची का नाम मुहरबंद लिफाफे में रखने का कोई कारण नहीं था । वैकल्पिक रूप से, उन्होंने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी विभाग ने कारण बताओ नोटिस के संबध में याची द्वारा प्रस्तुत उत्तर देने के पश्चात् यह पाया कि याची का उत्तर संतोषजनक है और कार्यवाही (याची के विरुद्ध) बंद कर दी गई थी और आदेश में यह भी विनिर्दिष्ट किया गया कि याची का दायित्व साबित नहीं हो सका । उन्होंने निवेदन किया कि तारीख 20 फरवरी, 2007 के आदेश में यह भी स्पष्ट रूप से कथन किया गया है कि याची को कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित सभी आरोपों से मुक्त किया जाता है, इसलिए, तारीख 20 फरवरी, 2007 को आदेश पारित होने के पश्चात् विभाग ने विधि के नियमों का पालन करने हेतु डीपीसी की सिफारिश वाले मुहरबंद लिफाफे को खोला और याची के पक्ष में तारीख 24 जुलाई, 2007 को पदोन्नति का आदेश जारी कर याची को वन रेंज प्राधिकारी के पद से सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नत किया । तथापि, प्रत्यर्थी विभाग ने याची को पिछली तारीख यानी 4 नवंबर, 2004 से पदोन्नति न देकर त्रुटि की है, जिस तारीख को अन्य कर्मचारियों के पक्ष में पदोन्नति का आदेश जारी किया था । उन्होंने निवेदन किया कि चूंकि डीपीसी की बैठक आयोजित करने की तिथि पर जिन कर्मचारियों के विरुद्ध विभागीय जांच या कोई आपराधिक कार्यवाही लंबित है, ऐसे कर्मचारी का नाम मुहरबंद लिफाफे में रखा जाना था । लेकिन जैसे ही ऐसे कर्मचारी को सभी आरोपों से सम्मानपूर्वक दोषमुक्त कर दिया जाता है, उक्त कर्मचारी को डीपीसी की सिफारिश के आधार पर पदोन्नति की प्रारंभिक तिथि से पदोन्नत किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, याची को पदोन्नति तारीख 24 जुलाई, 2007 को आदेश जारी करने से पदोन्नत किया गया है, जबकि

याची को तारीख 1 अक्तूबर, 2004 के बाद पदोन्नत किया जाना था । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को यह निदेशित किया जाए कि याची को तारीख 4 नवंबर, 2004 से वेतन के बकाया सहित सभी पारिणामिक लाभों का हक दिया जाए । रिट याचिका के साथ प्रस्तुत अभिलेखों/दस्तावेजों से दर्शित है कि याची को तारीख 3 अप्रैल, 2002 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था, जिसका उसने तारीख 15 नवंबर, 2002 को उत्तर दिया था, यानी डीपीसी के गठन से लगभग दो वर्ष पूर्व प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने उत्तर पर विचार नहीं किया और उसका विनिश्चय नहीं किया । कारण बताओ नोटिस प्रस्तुत में दिए गए उत्तर के आधार पर, याची को तारीख 20 फरवरी, 2007 को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया था, जो याची द्वारा उत्तर को प्रस्तुत किए जाने के चार वर्ष से ज्यादा समय के उपरांत किया गया था । चूंकि कारण बताओ नोटिस के परिणाम में देरी करने में याची की ओर से किसी भी प्रकार की कोई कृत्य और लोप नहीं हुई है, इसलिए, याची तारीख 4 नवंबर, 2004 से 24 जुलाई, 2007 तक की अवधि के लिए बकाया वेतन पाने का हकदार है । उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत संघ और अन्य** बनाम **के. वी. जानकीरमन और अन्य**[1] और **गुरपाल सिंह** बनाम **राजस्थान उच्च न्यायालय**[2] वाले मामलों में पारित विनिश्चयों का अवलंब लिया ।

4. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान् सरकारी काउंसेल श्री समीर उरांव ने याची के विद्वान् काउसेंल के निवेदनों का विरोध करते हुए यह निवेदन किया कि डीपीसी द्वारा वन रेंज अधिकरारियों की पदोन्नति के लिए हकदारी पर विचार करने की अर्थात् तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को याची को पदोन्नति के लिए हकदार नहीं पाया था क्योंकि उन्हें अनियमितताओं तथा कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, इसलिए, उनकी उम्मीदवारी पर विचार नहीं किया गया । उक्त संबंध में, याची से उत्तर की ईप्सा की गई थी जो विचाराधीन है । डीपीसी ने ठीक ही पदोन्नति के लिए याची के नाम की अनुशंसा नहीं की है । इसके अतिरिक्त यह भी दलील दी

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 109.

[2] (2012) 13 एस. सी. सी. 94.

गई कि याची तारीख 4 नवंबर, 2004 से परिणामिक लाभों का हकदार नहीं है, जैसी कि याचिका के अनुतोष खंड में ईप्सा की गई है । याची को न तो पदोन्नत किया गया था और न ही उसने पूर्वोक्त अवधि के दौरान सहायक वन संरक्षक के पद पर कार्य किया था, इसलिए वह 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांतों के अनुसरण में बकाया वेतन पाने के लिए हकदार नहीं है । उन्होंने दलील दी है कि कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित आरोपों से जानकारी मिलने के पश्चात् और उसके विरुद्ध प्रारंभ की गई की गई कार्यवाही फाइल होने पर प्रत्यर्थी विभाग ने डीपीसी की सिफारिश वाला मुहरबंद लिफाफा खोला था तथा याची को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नत किया था । इसलिए, प्रत्यर्थी की कार्रवाई में कोई मनमाना नहीं है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि याची द्वारा फाइल याचिका गुणागुण नहीं होने से खारिज किए जाने योग्य है । उन्होंने यह भी बताया कि याची के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस में किए गए अभिकथित आरोप धन के गबन तथा वित्तीय अनियमितताओं से संबंधित हैं । इसलिए, पदोन्नति के लिए याची की योग्यता पर विचार करना विभाग का कार्य है ।

5. मैंने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना तथा रिट याचिका के अभिलेख का परिशीलन किया ।

6. निर्विवाद तथ्य यह है कि जब याची वन संरक्षक, सरगुजा वृत्त, सरगुजा के अधीन वन परिक्षेत्र अधिकारी के पद पर पदस्थ था, तब उसे विभाग द्वारा प्रतिकरात्मक अनियमितता करने के कारण 1,23,049/- रुपए का अपव्यय करने के लिए तारीख 3 अप्रैल, 2002 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था । याची को कारण बताओ नोटिस इस आशय से दिया गया कि क्यों न उक्त राशि याची से वसूल की जाए और क्यों न याची की तीन वार्षिक वेतन वृद्धियां गैर-संचयी प्रभाव से रोकी जाएं । याची ने कारण बताओ नोटिस का उत्तर तारीख 15 नवंबर, 2002 को वन संरक्षक, बालाघाट सर्किल, मध्य प्रदेश को प्रस्तुत किया । यह भी उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश राज्य के पुनर्गठन के बाद भी बालाघाट सर्किल मध्य प्रदेश के प्रादेशिक अधिकारिता में रहा । याची द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया गया और कारण बताओ नोटिस तारीख 20 फरवरी, 2007 तक विचार और विनिश्चय के लिए लंबित रहा । वन

संरक्षक, रायपुर द्वारा पारित आदेश के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि कारण बताओ नोटिस का उत्तर, मुख्य वन संरक्षक, रायपुर के कार्यालय को भेज दिया गया था, जिन्होंने याची की ओर से नोटिस और उत्तर पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित करते हुए आदेश पारित किया कि याची द्वारा 1,23,049/- रुपए की अपव्यय में संलिप्तता साबित नहीं हो सकी है । इसी दौरान, तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए योग्य और विचाराधीन क्षेत्र के भीतर वन परिक्षेत्र अधिकारियों के नामों की सिफारिश के आधार पर, तारीख 4 नवंबर, 2004 को पदोन्नति आदेश जारी किया गया था । याची का नाम भी सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए विचाराधीन था, लेकिन तारीख 3 फरवरी, 2002 को कारण बताओ नोटिस जारी होने को कारण याची के संबंध में डीपीसी की सिफारिश को एक मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था, जिसे कारण बताओ नोटिस के परिणाम के बाद खोला जाना था । तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को आयोजित डीपीसी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया विवादित नहीं है, बल्कि इसे प्रत्यर्थियों ने रिट याचिका के अपने उत्तर के पैरा 4 में स्वीकार किया है । प्रत्यर्थियों ने यह भी स्वीकार किया है कि सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए वन रेंज प्राधिकारी की हकदारिता पर विचार करने की तिथि पर लंबित कारण बताओ नोटिस की कार्यवाही बाद में समाप्त कर दी गई थी, इसलिए, याची को तारीख 24 जुलाई, 2007 को सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नति प्रदान की गई थी ।

7. इस न्यायालय द्वारा विचारणीय विवाद्यक यह है कि क्या सभी अभिभोगों से मुक्त होने या विभागीय कार्यवाही बंद होने के पश्चात् याची, जो डीपीसी की बैठक की तारीख अर्थात् 1 अक्तूबर, 2004 को पदोन्नति के लिए विचाराधीन था, लेकिन कारण बताओ नोटिस जारी होने के कारण उसकी सिफारिश को मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था, उस तारीख से पदोन्नति के लिए हकदार हैं, जब अन्य समान श्रेणी वाले कर्मचारियों के पक्ष में पदोन्नति आदेश जारी किया गया था, जिनके नामों पर डीपीसी की तारीख 1 अक्तूबर, 2004 की बैठक में विचार किया गया था ।

8. पदोन्नति के मामलों में मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया पर

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **के. वी. जानकीरामन** वाले मामले (उपरोक्त) में विचार किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह केवल तभी लागू किया जाना चाहिए जब किसी आपराधिक कार्यवाही में आरोप पत्र कर्मचारी के विरुद्ध जारी किया जाता है । आरोप-पत्र/मेमो जारी होने के पश्चात् मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए । इस मामले में, याची को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उससे यह स्पष्टीकरण मांगा गया था कि क्यों न उससे अपव्यय की राशि वसूल की जाए और क्यों न गैर-संचयी प्रभाव से उसकी तीन वार्षिक वेतन वृद्धि रोकी जाए । छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1966 (संक्षेप में 'नियम, 1966') के नियम 10 के अधीन सरकारी कर्मचारी पर मामूली दंड लगाने की कार्रवाई का उपबंध है । नियम, 1966 के नियम 10(iii) और (iv) इस प्रकार हैं :-

> (iii) उसकी लापरवाही या आदेश के भंग के कारण सरकार को हुई किसी भी धन हानि की पूरी या आंशिक राशि उसके वेतन से वसूल की जाएगी ।
>
> (iv) वेतन वृद्धि या ठहराव भत्ते को रोकना ;

9. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **के. वी. जानकीरामन** (उपर्युक्त) वाले मामले में, एक कर्मचारी, जिसका नाम मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था, को विभागीय/आपराधिक कार्यवाही में उसके विरुद्ध लगाए गए अभियोगों से दोषमुक्त करने के प्रभाव पर भी विचार किया गया था और इस प्रकार से अभिनिर्धारित किया गया है :-

> "16. पहले प्रश्न पर, अर्थात् मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया के प्रयोजनों के लिए अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही कब प्रारंभ हुई इसे अधिकरण की पूर्ण न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि यह तभी संभव है जब अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोप-ज्ञापन या आपराधिक अभियोजन में आरोप पत्र कर्मचारी को जारी किया जाता है, तभी यह कहा जा सकता है कि कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही/आपराधिक अभियोजन प्रारंभ किया गया है । आरोप-ज्ञान/आरोप पत्र जारी होने के पश्चात् मुहरबंद लिफाफे की

प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए । उस चरण से पूर्व प्रारंभिक जांच का लंबित होना प्राधिकारियों को मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया अपनाने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा । हम इस बिंदु पर अधिकरण से सहमत हैं । अपीलार्थी-प्राधिकारियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि जब गंभीर आरोप हों और आरोप-ज्ञापन/आरोप पत्र तैयार करने और जारी करने के लिए आवश्यक साक्ष्य एकत्र करने में समय लगता हो, तो कर्मचारी को पदोन्नति, वेतन वृद्धि आदि से पुरस्कृत करना प्रशासन की शुद्धता के हित में नहीं होगा, यह हमें प्रभावित नहीं करता । इस दलील को स्वीकार करने से कई मामलों में कर्मचारियों के साथ अन्याय होगा । जैसा कि अब तक का अनुभव रहा है, प्रारंभिक जांच में बहुत लंबा समय लगता है और विशेष रूप से जब वे हितबद्ध व्यक्तियों की प्रेरणा पर प्रारंभ की जाती है, तो उन्हें जानबूझकर लंबित रखा जाता है । उनमें कई बार वे कभी भी कोई आरोप-ज्ञापन/आरोप पत्र जारी नहीं होते हैं । यदि अभिकथन गंभीर हैं और प्राधिकारी उनकी जांच करने के लिए उत्सुक हैं, तो आम तौर पर सुसंगत साक्ष्य को इकट्ठा करने और आरोपों को अंतिम रूप देने में ज्यादा समय नहीं लगना चाहिए । इसके अतिरिक्त, यदि आरोप इतने गंभीर हैं, तो प्राधिकारियों के पास सुसंगत नियमों के अधीन कर्मचारी को निलंबित करने का अधिकार है और निलंबन अपने आप में मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया का सहारा लेने की अनुज्ञा देता है । इस प्रकार प्राधिकारी उपाय के बिना नहीं है। तब प्राधिकारियों की ओर से यह दलील दी गई कि निष्कर्ष संख्या 1 और 4 न्यायाधिकरण की पूर्ण न्यायपीठ के निष्कर्ष एक दूसरे से असंगत हैं । वे निष्कर्ष इस प्रकार हैं – (एटीसी पृष्ठ 196, पैरा 39)

"(1) किसी प्राधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक या आपराधिक कार्यवाही लंबित होने के आधार पर पदोन्नति, चयन ग्रेड, दक्षता सीमा पार करने या उच्चतर वेतनमान पर विचार करने को नहीं रोका जा सकता है;

(2) *****

(3) *****

(4) मुहरबंद लिफाफे की प्रकिया की सहारा केवल तभी लिया जा सकता है जब संबंधित प्राधिकारी को आरोप पत्र सौंप दिया जाए या आपराधिक न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र फाइल कर दिया जाए, इससे पहले नहीं ।"

10. किसी ऐसे कर्मचारी की पदोन्नति के लिए मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया अपनाना जो पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र के अधीन है लेकिन उसके विरुद्ध विभागीय जांच लंबित है, तो विभागीय जांच पूर्ण होने और आरोपों से मुक्त होने के तुरंत बाद, ऐसे कर्मचारी की पदोन्नति के लिए उम्मीदवारी पर विचार किया जाना चाहिए, जो कि प्रत्यर्थियों द्वारा ठीक ही किया गया है । याची को आरोपों से मुक्त कर दिया गया है और उसके विरुद्ध लंबित मामला तारीख 20 फरवरी, 2007 के आदेश के अधीन बंद कर दिया गया है । इसके पश्चात्, याची को तारीख 24 जुलाई, 2007 को पदोन्नत किया गया । इस रिट याचिका में याची द्वारा यह शिकायत की गई है कि उसे उस तारीख से पदोन्नति नहीं दी गई जब अन्य वन रेंज अधिकारियों को आदेश तारीख 4 नवंबर, 2004 के अधीन पदोन्नत किया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **के. वी. जानकीरमन** (उपरोक्त) के मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"34. इस मामले में प्रत्यर्थी-कर्मचारी के मामले पर अगस्त, 1982 में डीपीसी द्वारा पदोन्नति के लिए विचार किया गया था । तथापि, उसके विरुद्ध लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही को ध्यान में रखते हुए परिणाम को एक मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था । कर्मचारी के अनुसार, तारीख 11 अक्तूबर, 1985 को अनुशासनात्मक कार्यवाही में उसे पूर्णत: दोषमुक्त किया गया । इसके पश्चात् मार्च, 1986 में फिर से एक डीपीसी गठित की गई, जिसने कर्मचारी के मामले पर विचार करने के पश्चात् उसे तारीख 26 जुलाई, 1986 से पदोन्नति के लिए सिफारिश की । यह स्पष्ट रूप से ज्ञापन में अन्तर्विष्ट अनुदेशों के भी विपरीत था । वह उस तारीख से पदोन्नति का हकदार था, जिस दिन उसके तत्काल कनिष्ठ को

अगस्त, 1982 में या उसके पश्चात् किया गया था, यदि वह अगस्त, 1982 में डीपीसी द्वारा पदोन्नति के लिए योग्य पाया गया था, इसलिए अधिकरण ने अपीलार्थी को मुहरबंद लिफाफा खोलने और यदि 1982 में डीपीसी ने उसे पदोन्नत के लिए योग्य पाया गया था, तो उसे उस तारीख से पदोन्नति देने का निदेश दिया, जिस दिन उसके तत्काल कनिष्ठ को पदोन्नत किया गया था । तथापि, ऐसा करते समय, अभिकरण ने सभी परिणामिक लाभों के साथ मध्यवर्ती अवधि के लिए वेतन बकाया का संदाय करने का भी निदेश दिया है । चूंकि हमने अधिकरण की पूर्ण न्यायपीठ के इस विनिश्चय से असहमति अभिनिर्धारित की है कि वेतन के बकाए का लाभ स्वत: नहीं मिलेगा, बल्कि प्रत्येक मामले में परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, इसलिए हम उक्त आदेश को इस सीमा तक संशोधित करते हैं कि जहां तक के बकाए के संदाय का निदेश देता है और अपीलार्थी-प्राधिकारी को यह विचार करने का निदेश देता है कि क्या मामले की परिस्थितियों में कर्मचारी वेतन के किसी बकाए का हकदार था और यदि वह हकदार था तो किस सीमा तक । प्राधिकारी निश्चित रूप से वेतन के बकाए के पूरे या हिस्से को अस्वीकार करने के कारण बताएगा । इसलिए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है, खर्चे के विषय में कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।"

11. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गुरपाल सिंह** बनाम **राजस्थान उच्च न्यायालय**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"51. इस मामले में यह अभिलेख का विषय है कि विभागीय जांच में दोषमुक्त होने के पश्चात् याची को सेवा में बहाल कर दिया गया था । उसे कोई सजा नहीं दी गई थी । तथापि, आपराधिक विचारण के लंबित रहने के दौरान और विभागीय कार्यवाहियों के भी दौरान, जब उससे कनिष्ठ व्यक्तियों के मामले पर विचार किया गया, तो उसे पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया गया । हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने तारीख 29 नवंबर, 2008

[1] (2012) 13 एस. सी. सी. 94.

के पूर्ण न्यायालय संकल्प और तारीख 24 जनवरी, 2009 के संसूचना में निदेश देकर त्रुटि की कि याची किसी भी पदोन्नति का हकदार नहीं है ।

52.... हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि याची भी उस तारीख से पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का हकदार है, जब उससे कनिष्ठ प्राधिकारी को पदोन्नत किया गया था । इसलिए, हम उच्च न्यायालय को निदेश देते हैं कि वह पदोन्नति के लिए याची के मामले पर विचार करे (यदि वह अन्यथा नियमों के अनुसार आवश्कताओं के पूरा करता है) उससे कनिष्ठ व्यक्ति पर विचार किया गया था और उसे अगले उच्चपद पर कनिष्ठ व्यक्तियों को पदोन्नत किया गया था । उच्च न्यायालय द्वारा इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर ऐसा विनिश्चय किया जाना चाहिए ।"

12. माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त वर्णित दो निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि कर्मचारी का नाम डीपीसी द्वारा मुहरबंद लिफाफे में रखा गया था और ऐसे कर्मचारी को दोषमुक्त करने के पश्चात् उसे खोलने पर उसे पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाया गया, तो ऐसे कर्मचारी को उस तारीख से पदोन्नत किया जाना चाहिए, जिस तिथि को उससे कनिष्ठ या डीपीसी द्वारा विचार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले अन्य कर्मचारियों को पदोन्नत किया गया था । वर्तमान मामले में, डीपीसी की सिफारिश के आधार पर, वन रेंज प्राधिकारी जो तारीख 4 नवंबर, 2004 के आदेश द्वारा पदोन्नत किया गया था । इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, याची भी तारीख 4 नवंबर, 2004 से सहायक वन संरक्षक के पद पर पदोन्नत होने का हकदार है । तद्नुसार आदेश दिया जाता है ।

13. याची के विद्वान् काउसेंल का दूसरा निवेदन वेतन के बकाए सहित सभी परिणामिक लाभों के अनुदान के संबंध में है । **के. वी. जानकीरमन** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस विवाद्यक पर भी विचार किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई कर्मचारी विभागीय जांच के निष्कर्ष में देरी करने का

माध्यम है, तो वह पूरा बकाया वेतन पाने का हकदार नहीं होगा । उक्त निर्णय का पैरा 26 त्वरित संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "26. इसलिए, हम अधिकरण के इस निष्कर्ष से मोटे तौर पर सहमत हैं कि जब किसी कर्मचारी को पूरी तरह से दोषमुक्त कर दिया जाता है, जिसका अर्थ है कि उसे 'बिल्कुल भी दोषी नहीं पाया जाता है और उसे परिनिंदा का भी दंड नहीं दिया जाता है, तो उसे उच्च पद के वेतन के साथ-साथ अन्य लाभों का लाभ उस तारीख से दिया जाना चाहिए, जिस तारीख को उसे सामान्य रूप से पदोन्नत किया जाता, लेकिन अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही के लिए । तथापि, ऐसे मामले भी हो सकते हैं, जहां कार्यवाही, चाहे अनुशासनात्मक हो या आपराधिक, उदाहरण के लिए, कर्मचारी की प्रेरणा पर विलंबित हो जाती है या अनुशासनात्मक कार्यवाही में समशोधन या आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्ति संदेह के लाभ के साथ या कर्मचारी द्वारा किए गए कार्यों के कारण साक्ष्य की अनुपलब्धता के कारण होती है । ऐसी परिस्थितियों में, संबंधित अधिकारियों को यह विनिश्चय करने का अधिकार होना चाहिए कि कर्मचारी बीच की अवधि के लिए किसी भी वेतन का हकदार है या नहीं और यदि वह हकदार है, तो वह किस सीमा तक इसका हकदार है । जीवन जटिल है, इसलिए, उन सभी परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगाना और उनका विस्तृत विवरण देना संभव नहीं है, जिनके अधीन इस प्रकार के विचार आवश्यक हो सकते हैं । तथापि, अवज्ञा के लिए, ऐसी परिस्थितियां जब विद्यमान हों और एक कठोर नियम अधिकथित करती है कि हर मामले में जब कोई कर्मचारी अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्त हो जाता है तो उसे बीच की अवधि के लिए सभी वेतन हकदार होना चाहिए, प्रशासन में अनुशासन को कमजोर करना और लोक हितों को संकट में डालना है इसलिए हम अधिकरण से सहमत नहीं है कि किसी कर्मचारी को वेतन देने से इंकार करना सभी परिस्थितियों में अवैध होगा । इसलिए हम उक्त ज्ञापन के पैराग्राफ 3 के खंड (iii) के बाद पहले उप-पैरा में उक्त अंतिम वाक्य को स्वीकार नहीं करते हैं, अर्थात् "लेकिन वास्तविक पदोन्नति की तारीख से पहले की

काल्पनिक पदोन्नति की अवधि के लिए उसे कोई वेतन बकाया देय नहीं होगा", हम निदेश देते हैं कि उक्त वाक्य के स्थान पर ज्ञापन में निम्नलिखित वाक्य पढ़ा जाए :–

> "तथापि, क्या संबंधित प्राधिकारी वास्तविक पदोन्नति की तारीख से पहले काल्पनिक पदोन्नति की अवधि के लिए वेतन के किसी भी बकाया का हकदार होगा और यदि हां तो किस हद तक, इसका विनिश्चय संबंधित प्राधिकारी द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही/आपराधिक अभियोजन के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा । जहां प्राधिकारी वेतन या उसके हिस्से के बकाया से इंकार करता है, वह ऐसा करने के अपने कारणों को अभिलिखित करेगा ।" इस हद तक हम उक्त बिंदु पर अधिकरण के निष्कर्ष को खारिज करते हैं ।"

14. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारत संघ और अन्य** बनाम **डॉ. सुधासलहान (श्रीमती)**[1] वाले मामले में पुन: इस बात पर चर्चा की कि मुहरबंद लिफाफे की प्रक्रिया कब अपनाई जाए और इस प्रकार से अभिनिर्धारित किया :–

> "6. तथापि, यह प्रश्न भारत संघ और अन्य **बनाम** के. बी. जानकीरमन और अन्य (1991) 4 एस. सी. सी. 109 वाले मामले में, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के विनिश्चयों द्वारा समाप्त हो गया है, जिसमें भी यही मत अपनाया गया है । हम उपरोक्त विनिश्चय से सम्मानपूर्वक सहमत हैं । हमारी यह भी राय है कि यदि विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा किसी व्यक्ति के नाम पर उच्चतम पद पर पदोन्नति के लिए विचार किए जाने की तिथि को ऐसा व्यक्ति न तो निलम्बित है और न ही उसके विरुद्ध कोई विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गई है, तो यदि वह योग्य और उपयुक्त पाया जाता है तो उसका नाम चयन सूची में लाया जाना चाहिए तथा "मुहरबंद लिफाफा" प्रक्रिया नहीं अपनाई जा सकती । विभागीय पदोन्नति समिति की सिफारिश को "मुहरबंद लिफाफा"

[1] (1998) 3 एस. सी. सी. 394.

में तभी रखा जा सकता है, जब पदोन्नति के लिए नाम पर विचार किए जाने की तिथि को विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ हो चुकी हो या लंबित हो या उसके समापन पर समुचित प्राधिकारी द्वारा अंतिम आदेश पारित न किया गया हो । यह स्पष्ट है कि यदि वह प्राधिकारी, जिसके विरूद् विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गई थी, अंततः दोषमुक्त हो जाता है, तो विभागीय पदोन्नति समिति की सिफारिश वाला मुहरबंद लिफाफा खोला जाएगा तथा सिफारिश को प्रभावी किया जाएगा ।"

15. वर्तमान मामले में, कारण बताओ नोटिस प्राप्त होने के पश्चात्, याची ने कुछ माह के भीतर उत्तर प्रस्तुत किया था लेकिन कारण बताओ नोटिस और उत्तर, वर्ष 2002 से 2007 तक यानि लगभग चार वर्षों तक लंबित रहा, जिसमें याची को अंततः अपव्यय के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराते हुए, मामला बंद कर दिया गया था और कार्यवाही समाप्त कर दी गई थी ।

16. इस न्यायालय की राय में, प्रत्यर्थियों ने तारीख 24 जुलाई, 2007 को पदोन्नति का आदेश पारित करते समय इस बात पर विचार नहीं किया कि तारीख 24 जुलाई, 2007 का आदेश डीपीसी द्वारा तारीख 1 अक्तूबर, 2004 को रखे गए मुहरबंद लिफाफे के अनुसरण में है । यदि यह स्थिति है, तो याची पिछली तारीख से पदोन्नति के लिए हकदार था जब उसका नाम डीपीसी से पहले विचाराधीन था और अन्य कर्मचारी जिन पर उसी डीपीसी द्वारा विचार किया गया और उन्हें तारीख 4 नवंबर, 2004 को पदोन्नत किया गया ।

17. उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । प्रत्यर्थियों को यह निदेशित किया जाता है कि वे याची को तारीख 4 नवंबर, 2004 से सभी परिणामिक लाभों के साथ पदोन्नति प्रदान करें ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

अम./क.

रविन्दर सिंह

बनाम

राय सिंह और अन्य

(2009 की नियमित द्वितीय अपील संख्या 325)

तारीख 4 अक्तूबर, 2021

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और आदेश 39 – द्वितीय अपील – स्थायी सम्पत्ति – व्यादेश – अनन्य कब्जा – यदि किसी स्थायी सम्पत्ति के कई स्वामी है और वे एक-दूसरे की आपसी सहमति से पृथक्-पृथक् कब्जे में हैं तो भी जब तक उस सम्पत्ति का विधि के अनुसार विभाजन नहीं हो जाता है तब तक उस सम्पत्ति का प्रत्येक सह-स्वामी अपने कब्जे वाली सम्पत्ति का अनन्य कब्जे का दावा नहीं कर सकता है – अनन्य कब्जे में रहने वाला एक सह-अंशधारी को भी उसके कब्जे वाली भूमि पर निर्माण करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है जब तक कि माप और सीमा द्वारा उसका विभाजन नहीं हो जाता है ।

वर्तमान मामले में, वादी द्वारा फाइल वाद में, उसने प्रतिवादियों को वाद भूमि में समाविष्ट खेवट संख्या 8 मीन, खतौनी संख्या 14 मीन, 15 मीन, वर्ष 1999-2000 के लिए जमाबंदी के अनुसार, खसरा संख्या 1955, 1952, 1953 स्थित ग्राम मोहल कोटला कलान, तहसील और जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश की प्रकृति में परिवर्तन करने से और उसके ऊपर निर्माण करने से अवरुद्ध करते हुए, स्थायी व्यादेश की डिक्री पारित करने की प्रार्थना की है । वैकल्पिक रूप में, अधिसंरचना को ध्वस्त करते हुए, आज्ञापक व्यादेश के लिए डिक्री पारित करने की भी प्रार्थना की, यदि प्रतिवादियों द्वारा वाद लम्बित रहने के दौरान बलपूर्वक कोई अधिसंरचना निर्मित की है । वादपत्र में यह अभिवाचित था कि वाद

भूमि, संयुक्त रूप से वादी, प्रतिवादी संख्या 1 और जसवीर सिंह की विधवा श्रीमती सुरेष्ठा देवी के स्वामित्व और कब्जे में थी । मूल प्रतिवादी, पिता और पुत्र थे । उन्होंने भूमि का नियमित विभाजन हुए बिना वाद भूमि के बेहतर और मूल्यवान टुकड़े पर बलपूर्वक निर्माण कर लिया था । अपने लिखित कथन में, प्रतिवादियों ने यह स्वीकार किया कि खसरा संख्या 1952, 1953 और 1955 माप 0-13-90 हेक्टयर वाद भूमि वादी, प्रतिवादी संख्या 1 और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के संयुक्त स्वामित्व में थी । प्रतिरक्षा यह की गई थी कि प्रतिवादी संख्या 1 संतोख सिंह और होशियार सिंह (वादी का पिता) सगे भाई थे और प्रत्येक आधे-आधे हिस्से की सीमा तक वाद भूमि के सह-स्वामी थे । श्री होशियार सिंह ने प्रतिवादी की सहमति से खसरा संख्या 1952 के ऊपर निर्माण किया था । श्री होशियार सिंह खसरा संख्या 1952 और 1953 के अनन्य कब्जे में था । अपने जीवनकाल के दौरान श्री होशियार सिंह ने तारीख 31 जनवरी, 2002 को एक रजिस्ट्रीकृत विल निष्पादित की थी जिसके अधीन खसरा संख्या 1952 के ऊपर उसके द्‌वारा निर्मित गृह को अपनी बहु श्रीमती सुरेष्ठा देवी को दे दिया था और खसरा संख्या 1952 और 1953 के शेष भाग को वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में बराबर-बराबर हिस्से में वसीयत कर दी थी । इस विल को श्री होशियार सिंह के विधिक उत्तराधिकारियों ने जिसमें वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी सम्मिलित थी, स्वीकार कर लिया था । पक्षकारों ने अपनी क्रमशः दलीलों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किया है । अभिवचनों, साक्ष्यों और पक्षकारों द्‌वारा दी गई दलीलों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विद्‌वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 29 मार्च, 2008 को सिविल वाद खारिज कर दिया, वादी ने विद्‌वान् विचारण न्यायालय द्‌वारा पारित तारीख 29 मार्च, 2008 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध एक अपील फाइल की । विद्‌वान् अपर जिला न्यायाधीश, द्रुतगामी न्यायालय ने तारीख 16 मई, 2009 के निर्णय और डिक्री द्‌वारा अपील मंजूर कर ली । यह अभिनिर्धारित किया कि पृथक् कब्जा, आपसी विभाजन के माध्यम द्‌वारा कब्जे की कोटि में नहीं आता है । पृथक् कब्जा का

पक्षकारों के बीच भूमि का उपयोग करने के प्रयोजन के लिए बेहतर उपयोग हो सकता है । विधि के अनुसार, जब तक विभाजन नहीं हो जाता है तब तक कोई भी सह-स्वामी अनन्य कब्जे का दावा नहीं कर सकता है । अनन्य कब्जे में रहने वाला एक सह-अंशधारी को भी उसके कब्जे की भूमि पर निर्माण करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है जब तक कि माप और सीमा द्वारा उसका विभाजन नहीं हो जाता है । विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादी ने वर्तमान नियमित द्वितीय अपील फाइल की है । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और साक्ष्यों से यह पता चलता है कि वाद भूमि में तीन खसरा संख्या अर्थात् 1952, 1953 और 1955 समाविष्ट था । वाद भूमि का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 0-13-90 हेक्टेयर है । वादी ने अभि. सा. 2 के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित होते हुए, यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि आरम्भतः उसके पूर्वाधिकारी श्री होशियार सिंह के साथ मूल प्रतिवादी संख्या 1 श्री संतोख सिंह द्वारा प्रत्येक आधे हिस्से की सीमा तक धारित थी । श्री संतोख सिंह और श्री होशियार सिंह सगे भाई थे । पक्षकार, तीनों खसरा संख्याओं में पृथक् कब्जे के लिए स्वयमेव आपस में पारस्परिक रूप सहमत हुए थे । उनकी पारस्परिक सहमति से खसरा संख्या 1952 और खसरा संख्या 1953 श्री होशियार सिंह के अनन्य कब्जे में आया था जबकि खसरा संख्या 1952 श्री संतोख सिंह के अनन्य कब्जे में आया था । श्री होशियार सिंह ने मूल प्रतिवादी संख्या 1 अर्थात् श्री संतोख सिंह की सहमति से खसरा संख्या 1952 के एक भाग पर निर्माण किया था । श्री होशियार सिंह ने खसरा संख्या 1952 पर उसके द्वारा निर्मित गृह का वसीयत करते हुए अपनी पुत्रवधु श्रीमती सुरेष्ठा देवी पत्नी श्री जसवीर सिंह (वादी का भाई) के पक्ष में एक वसीयत निष्पादित की थी और खसरा संख्या 1952 का शेष भाग तथा सम्पूर्ण खसरा संख्या 1953 को वादी-श्री राय सिंह और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में वसीयत कर दी थी । इसके पश्चात्, तीनों खसरा संख्याओं पर पक्षकारों द्वारा पृथक् कब्जा बनाए रखा गया है । पूर्वोक्त रूप से, इन तीनों खसरा संख्याओं

पर पृथक् कब्जा वर्ष 1999-2000 के लिए जमाबंदी अर्थात् प्रदर्श डी-1 में भी प्रदर्शित किया गया है । प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत स्थल-नक्शा, जैसा कि उपर्युक्त वर्णित वाद भूमि पर पक्षकारों का पृथक् कब्जा दर्शित होता है, को वादी द्वारा स्वीकार किया गया है । स्थल-नक्शा वादी के साक्षी पियारे लाल बैंस द्वारा साबित है । नक्शे के अनुसार, खसरा संख्या 1952 और 1953 वादी राय सिंह और उसकी साली श्रीमती सुरेष्ठा देवी के कब्जे में थी । एक पी.डब्ल्यू.डी. की सड़क खसरा संख्या 1952 को विभाजित करती थी । खसरा संख्या 1955 प्रतिवादी के अनन्य कब्जे में दर्शित की गई है । पी.डब्ल्यू.डी. सड़क खसरा संख्या 1955 को भी क्रास करती थी । संयुक्त कब्जे में स्वामियों के रूप में रहने वाले व्यक्ति, अचल संपत्ति के संयुक्त कब्जे के व्यवस्थापन को उसी तरह और तरीके में एक दूसरे के संयुक्त कब्जे के अधिकार के संबंध में समर्थन करते हैं । अचल संपत्ति के संयुक्त कब्जे में रहने वाला व्यक्ति वाद संपत्ति की प्रकृति को परिवर्तित नहीं कर सकता है जब तक कि संपत्ति विभाजित नहीं हो जाती है या संयुक्त कब्जे में रहने वाले अन्य व्यक्तियों ने संपत्ति की प्रकृति में ऐसा परिवर्तन करने की सहमति नहीं दी है, निसंस्देह, एक सह-स्वामी का कब्जा, अन्य सह-स्वामियों के कब्जे के रूप में अर्थान्वयन किया जाता है, तथापि, वर्तमान मामले के तथ्य भिन्न हैं । सह-स्वामी, पारस्परिक सहमति द्वारा संयुक्त संपत्ति के पृथक्-पृथक् कब्जे में हैं । संयुक्त संपत्ति (वाद भूमि) में उनका पृथक् कब्जा एक दूसरे की सहमति से था । होशियार सिंह-वादी के पिता ने वाद संपत्ति के एक भाग पर निर्माण कर लिया था जो पारस्परिक व्यवस्थापन के निर्बंधनों के अनन्य कब्जे में था । होशियार सिंह ने भी खसरा संख्या 1952 और 1953 के संबंध में एक विल निष्पादित की थी, वाद संपत्ति जो सभी तीनों खसरा संख्याओं में से उसके अनन्य कब्जे में थी । इस विल के आधार पर नामांतरण का अनुप्रमाणन भी किया गया था । इस प्रकार, यह प्रकट होता है कि पक्षकार वाद संपत्ति के पृथक् भागों के कब्जे में थे । खसरा संख्या 1952 और 1953 होशियार सिंह-वादी के पिता के कब्जे में थे । होशियार सिंह ने एक

रजिस्ट्रीकृत विल के अधीन खसरा संख्या 1952 पर एक गृह का निर्माण किया था । उसने खसरा संख्या 1952 के इस भाग का वसीयत अपनी पुत्रवधु श्रीमती सुरेष्ठा देवी को और खसरा संख्या 1952 और 1953 का शेष भाग की वसीयत वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में बराबर-बराबर हिस्सों में कर दी थी । वादी/सह-अंशधारक ने अपने अनन्य कब्जे की संयुक्त भूमि के एक भाग पर पहले से ही निर्माण कर लिया था । इन परिस्थितियों और अभिलेख पर के साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, वादी, अन्य सह-स्वामियों (प्रतिवादियों) को अपने हिस्से के निबंधनों में अपने अनन्य कब्जे में संयुक्त भूमि (खसरा संख्या 1955) के भाग पर निर्माण करने से अवरुद्ध नहीं कर सकता है क्योंकि ऐसा सुव्यवस्थित कब्जा राजस्व अभिलेखों में अभिलिखित है और पक्षकारों द्वारा स्वीकृत है । इसलिए, विधि के प्रश्नों का निम्नलिखित रूप से उत्तर दिया जाता है – तथापि, सभी संयुक्त स्वामियों की सहमति से पक्षकारों के संयुक्त स्वामित्व में वाद भूमि अभिलिखित है, पक्षकार वाद भूमि के विभिन्न भागों पर सुव्यवस्थित कब्जे में थे । खसरा संख्या 1952 और 1953 वादी के पिता होशियार सिंह के पास था और खसरा संख्या 1955 मूल प्रतिवादी संख्या 1 संतोख सिंह के पास था । वर्ष 1999-2000 के लिए राजस्व अभिलेख-जमाबंदी (प्रदर्श डी-1) में वाद भूमि पर पक्षकारों का पृथक् कब्जा दर्शित है । स्थल-नक्शा (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए) वादी द्वारा स्वीकृत है और उसके साक्षी (अभि. सा. 1) द्वारा साबित है और वाद भूमि पर पक्षकारों का सुव्यवस्थित पृथक् कब्जा भी साबित है । होशियार सिंह ने न केवल खसरा संख्या 1952 के भागों पर निर्माण उद्भूत किया था अपितु एक रजिस्ट्रीकृत विल (मार्क-एक्स) के अधीन इन दोनों खसरा संख्याओं (1952 और 1953) को अपने दो उत्तराधिकारियों, जिसमें वादी सम्मिलित है, के पक्ष में वसीयत कर दी थी । वादी और उसके साक्षियों ने अपने कथनों में प्रतिवादियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा को स्वीकार किया है । प्रदर्श पी.-1 और प्रदर्श पी.-2 पर जमाबंदियां वाद भूमि से संबंधित नहीं हैं, इसलिए, वे सुसंगत नहीं हैं । मामले के तथ्यों में वादी, व्यादेश के साम्यिक अनुतोष को पाने का हकदार नहीं है । [पैरा 4(i), 4(ii), 4(iii), 4(iv) और 4(v)]

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	2016 (1) शिमला एल. सी. 207 : **अशोक कपूर** बनाम **मूर्तू देवी ;**	4(iv)
[2010]	(2010) 3 शिमला एल. सी. 205 : **पयार सिंह** बनाम **नारायण दास और अन्य ;**	4(iv)
[2007]	2007 (1) नवीनतम एच. एल. जे. (एच. पी.) 413 : **शिव चन्द** बनाम **मंगरू और अन्य ।**	4(iv)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की नियमित द्वितीय अपील संख्या 325.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री टी. एस. चौहान, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एन. के. ठाकुर, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ दिव्य राज सिंह, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ – प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा फाइल स्थायी व्यादेश के लिए सिविल वाद को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 29 मार्च, 2008 को खारिज कर दिया गया था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 16 मई, 2009 के निर्णय और डिक्री द्वारा अपीलार्थियों द्वारा फाइल अपील को मंजूर कर लिया और वाद डिक्री कर दिया था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए, प्रतिवादी द्वारा वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. इसमें इसके पश्चात् पक्षकारों को उसी प्रकार निर्दिष्ट किया जाएगा जैसी स्थिति में वे विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष थे ।

2(i). वादी (इसमें का प्रत्यर्थी संख्या 1) द्वारा फाइल वाद में, उसने प्रतिवादियों को वाद भूमि में समाविष्ट खेवट संख्या 8 मीन, खतौनी संख्या 14 मीन, 15 मीन, वर्ष 1999-2000 के लिए जमाबंदी के अनुसार, खसरा संख्या 1955, 1952, 1953 स्थित ग्राम मोहल कोटला कलान, तहसील और जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश की प्रकृति में परिवर्तन करने से और उसके ऊपर निर्माण करने से अवरुद्ध करते हुए, स्थायी व्यादेश की डिक्री पारित करने की प्रार्थना की है । वैकल्पिक रूप में, अधिसंरचना को ध्वस्त करते हुए, आज्ञापक व्यादेश के लिए डिक्री पारित करने की भी प्रार्थना की, यदि प्रतिवादियों द्वारा वाद लम्बित रहने के दौरान बलपूर्वक कोई अधिसंरचना निर्मित की है ।

2(ii). वादपत्र में यह अभिवाचित था कि वाद भूमि, संयुक्त रूप से वादी, प्रतिवादी संख्या 1 और जसवीर सिंह की विधवा श्रीमती सुरेष्ठा देवी के स्वामित्व और कब्जे में थी । मूल प्रतिवादी, पिता और पुत्र थे । उन्होंने भूमि का नियमित विभाजन हुए बिना वाद भूमि के बेहतर और मूल्यवान टुकड़े पर बलपूर्वक निर्माण कर लिया था ।

2(iii). अपने लिखित कथन में, प्रतिवादियों ने यह स्वीकार किया कि खसरा संख्या 1952, 1953 और 1955 माप 0-13-90 हेक्टेयर वाद भूमि वादी, प्रतिवादी संख्या 1 और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के संयुक्त स्वामित्व में थी । प्रतिरक्षा यह की गई थी कि प्रतिवादी संख्या 1 संतोख सिंह और होशियार सिंह (वादी का पिता) सगे भाई थे और प्रत्येक आधे-आधे हिस्से की सीमा तक वाद भूमि के सह-स्वामी थे । श्री होशियार सिंह ने प्रतिवादी की सहमति से खसरा संख्या 1952 के ऊपर निर्माण किया था । श्री होशियार सिंह खसरा संख्या 1952 और 1953 के अनन्य कब्जे में था । अपने जीवनकाल के दौरान श्री होशियार सिंह ने तारीख 31 जनवरी, 2002 को एक रजिस्ट्रीकृत विल निष्पादित की थी जिसके अधीन खसरा संख्या 1952 के ऊपर उसके द्वारा निर्मित गृह को अपनी बहु श्रीमती सुरेष्ठा देवी को दे दिया था और खसरा संख्या 1952 और 1953 के शेष भाग को वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष

में बराबर-बराबर हिस्से में वसीयत कर दी थी । इस विल को श्री होशियार सिंह के विधिक उत्तराधिकारियों ने जिसमें वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी सम्मिलित थी, स्वीकार कर लिया था । नामांतरण संख्या 691 इस प्रभाव की मंजूर किया गया था :–

> खसरा संख्या 1955, मृतक प्रतिवादी संख्या 1 श्री संतोख सिंह (वर्तमान अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 का पिता) के अनन्य कब्जे में था । वाद भूमि में प्रतिवादियों का हिस्सा 0-06-52 वर्गमीटर बनता है । जबकि प्रतिवादियों द्वारा खसरा संख्या 1955 में समाविष्ट भूमि में मात्र 0-00-84 वर्गमीटर भूमि पर निर्माण किया जाना आशयित है, जैसा कि लिखित कथन के साथ संबद्ध स्थल नक्शा से प्रकट होता है । इस प्रकार, यह अभिवाक् किया गया था कि सह-स्वामियों का अपनी आपसी व्यवस्था के अनुसार वाद भूमि पर पृथक्-पृथक् कब्जा था, उस व्यवस्था को उनमें से सभी के द्वारा स्वीकार किया गया है । वादी का पिता खसरा संख्या 1952 और 1953 के कब्जे में था । उसने खसरा संख्या 1952 के कुछ भाग के ऊपर पहले ही निर्माण कर लिया था । प्रतिवादी भी खसरा संख्या 1955 के कुछ भाग के ऊपर निर्माण करने के हकदार थे, जिसपर उनका अनन्य कब्जा था ।

2(iv). पक्षकारों ने अपनी क्रमशः दलीलों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किया है । अभिवचनों, साक्ष्यों और पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 29 मार्च, 2008 को सिविल वाद खारिज कर दिया, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वाद भूमि यद्यपि पक्षकारों के संयुक्त स्वामित्व में थी किन्तु वाद भूमि पर कब्जा, आपसी करार के माध्यम से पृथक्तः था । यह भी अभिनिर्धारित किया था कि वादी, व्यादेश का अनुतोष पाने का हकदार नहीं है क्योंकि उसने न्यायालय से यह तात्विक तथ्य छिपाया था कि उसके पिता होशियार सिंह खसरा संख्या 1952 और 1953 के पृथक् कब्जे में थे और खसरा संख्या 1952 के एक भाग पर पहले ही निर्माण

कर चुके थे । यह भी कि वाद भूमि का वादी के पिता श्री होशियार सिंह और मूल प्रतिवादी संख्या 1 श्री संतोख सिंह के बीच स्थल पर ही बंटवारा हो चुका था ।

2(v). वादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 29 मार्च, 2008 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध एक अपील फाइल की । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, द्रुतगामी न्यायालय ने तारीख 16 मई, 2009 के निर्णय और डिक्री द्वारा अपील मंजूर कर ली । यह अभिनिर्धारित किया कि पृथक् कब्जा, आपसी विभाजन के माध्यम द्वारा कब्जे की कोटि में नहीं आता है । पृथक् कब्जे का पक्षकारों के बीच भूमि का उपयोग करने के प्रयोजन के लिए बेहतर उपयोग हो सकता है । विधि के अनुसार, जब तक विभाजन नहीं हो जाता है तब तक कोई भी सह-स्वामी अनन्य कब्जे का दावा नहीं कर सकता है । अनन्य कब्जे में रहने वाला एक सह-अंशधारी को भी उसके कब्जे की भूमि पर निर्माण करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है जब तक कि माप और सीमा द्वारा उसका विभाजन नहीं हो जाता है । विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादी ने वर्तमान नियमित द्वितीय अपील प्रस्तुत की है ।

3. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने इस तथ्य का मूल्यांकन नहीं किया है कि वाद भूमि में समाविष्ट तीनों खसरा संख्याओं में से प्रतिवादियों का खसरा संख्या 1952 के ऊपर पृथक्-पृथक् कब्जा था । अन्य दो अन्य खसरा संख्याएं 1955 और 1953 वादी और उसकी साली श्रीमती सुरेष्ठा देवी के कब्जे में थीं और उनके पूर्व ये दोनों खसरा संख्याएं श्री होशियार सिंह के कब्जे में थीं । श्री होशियार सिंह और श्री संतोख सिंह (मूल प्रतिवादी संख्या 1) सगे भाई थे और वाद भूमि में प्रत्येक आधे हिस्से की सीमा तक सह-स्वामी थे । कुटुम्ब व्यवस्थापन के माध्यम से ये तीनों खसरा संख्याएं उनके बीच विभाजित की गई थीं । श्री होशियार सिंह ने खसरा संख्या 1952 के एक भाग पर एक गृह का निर्माण किया था । उसके

द्‌वारा निष्पादित एक विल के अधीन उसने अपनी पुत्रवधु श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में खसरा संख्या 1952 के ऊपर उसके द्‌वारा निर्मित गृह की वसीयत कर दी थी और खसरा संख्या 1952 का शेष भाग और खसरा संख्या 1953 को वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में बराबर हिस्सों में वसीयत कर दी थी । इस विल के आधार पर, नामांतरण का अनुप्रमाणन पहले ही हो चुका था । मूल प्रतिवादी संख्या 1 श्री संतोख सिंह भी खसरा संख्या 1955 के पृथक् और अनन्य कब्जे में था । प्रतिवादी इस खसरा संख्या के भागों के ऊपर ही निर्माण करना चाहते थे । वाद भूमि के ऊपर पक्षकारों का पृथक् कब्जा वर्ष 1999-2000 के लिए जमाबंदी, प्रदर्श डी-1 में प्रलक्षित था । इसलिए, वादी व्यादेश का अनुतोष पाने का हकदार नहीं था ।

प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्‌वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रतिवादी वाद भूमि के भागों पर निर्माण करते हुए सड़क की ओर से सटे वाद भूमि में से बेहतर भाग पर कब्जा करना चाहते हैं । प्रतिवादी वाद भूमि में मात्र सह-स्वामी थे । वे वाद भूमि के किसी भाग पर निर्माण नहीं कर सकते थे जब तक कि वाद भूमि की माप और सीमाओं का विभाजन नहीं हो जाता है ।

4. यह द्‌वितीय अपील तारीख 17 जुलाई, 2009 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार की गई थी :–

> “(1) क्या भूमि किसी दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में संयुक्त रूप से धारित की जा सकती है और विशिष्टतया अभि. सा. 2 के रूप में वादी की इस स्वीकृति और अभि. सा. 3 की इस स्वीकृति पर की कि भूमि पक्षकारों के बीच में विभाजित हो गई थी ?
>
> (2) क्या निर्णय, दस्तावेजी साक्ष्यों के साथ ही मौखिक साक्ष्यों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 और प्रतिवादी साक्षी 1 और प्रतिवादी साक्षी 2 और प्रदर्श पी 1 और प्रदर्श पी 2 के गलत परिशीलन का परिणाम है ?”

इन प्रश्नों का अवधारण करने के लिए निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां उपयुक्त हैं –

4(i). पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और साक्ष्यों से यह पता चलता है कि वाद भूमि में तीन खसरा संख्या अर्थात् 1952, 1953 और 1955 समाविष्ट था । वाद भूमि का सम्पूर्ण क्षेत्रफल 0-13-90 हेक्टेयर है ।

4(ii). वादी ने अभि. सा. 2 के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित होते हुए, यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि आरम्भतः उसके पूर्वाधिकारी श्री होशियार सिंह के साथ मूल प्रतिवादी संख्या 1 श्री संतोख सिंह द्वारा प्रत्येक आधे हिस्से की सीमा तक धारित थी । श्री संतोख सिंह और श्री होशियार सिंह सगे भाई थे । पक्षकार, तीनों खसरा संख्याओं में पृथक् कब्जे के लिए स्वयमेव आपस में पारस्परिक रूप सहमत हुए थे । उनकी पारस्परिक सहमति से खसरा संख्या 1952 और खसरा संख्या 1953 श्री होशियार सिंह के अनन्य कब्जे में आया था जबकि खसरा संख्या 1952 श्री संतोख सिंह के अनन्य कब्जे में आया था । श्री होशियार सिंह ने मूल प्रतिवादी संख्या 1 अर्थात् श्री संतोख सिंह की सहमति से खसरा संख्या 1952 के एक भाग पर निर्माण किया था । श्री होशियार सिंह ने खसरा संख्या 1952 पर उसके द्वारा निर्मित गृह का वसीयत करते हुए अपनी पुत्रवधु श्रीमती सुरेष्ठा देवी पत्नी श्री जसवीर सिंह (वादी का भाई) के पक्ष में एक वसीयत निष्पादित की थी और खसरा संख्या 1952 का शेष भाग तथा सम्पूर्ण खसरा संख्या 1953 को वादी-श्री राय सिंह और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में वसीयत कर दी थी । इसके पश्चात्, तीनों खसरा संख्याओं पर पक्षकारों द्वारा पृथक् कब्जा बनाए रखा गया है ।

4(iii). पूर्वोक्त रूप से, इन तीनों खसरा संख्याओं पर पृथक् कब्जा वर्ष 1999-2000 के लिए जमाबंदी अर्थात् प्रदर्श डी-1 में भी प्रदर्शित किया गया है ।

4(iv). प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत स्थल-नक्शा, जैसा कि उपर्युक्त वर्णित वाद भूमि पर पक्षकारों का पृथक् कब्जा दर्शित होता है, को वादी द्वारा स्वीकार किया गया है । स्थल-नक्शा वादी के साक्षी पियारे लाल बैंस (अभि. सा. 1) द्वारा साबित है । नक्शे के अनुसार, खसरा संख्या 1952 और 1953 वादी राय सिंह और उसकी साली श्रीमती सुरेष्ठा देवी के कब्जे में थी । एक पी.डब्ल्यू.डी. की सड़क खसरा संख्या 1952 को विभाजित करती थी । खसरा संख्या 1955 प्रतिवादी के अनन्य कब्जे में दर्शित की गई है । पी.डब्ल्यू.डी. सड़क खसरा संख्या 1955 को भी क्रास करती थी ।

संयुक्त कब्जे में स्वामियों के रूप में रहने वाले व्यक्ति, अचल संपत्ति के संयुक्त कब्जे के व्यवस्थापन को उसी तरह और तरीके में एक दूसरे के संयुक्त कब्जे के अधिकार के संबंध में समर्थन करते हैं । अचल संपत्ति के संयुक्त कब्जे में रहने वाला व्यक्ति वाद संपत्ति की प्रकृति को परिवर्तित नहीं कर सकता है जब तक कि संपत्ति विभाजित नहीं हो जाती है या संयुक्त कब्जे में रहने वाले अन्य व्यक्तियों ने संपत्ति की प्रकृति में ऐसा परिवर्तन करने की सहमति नहीं दी है, (**शिव चन्द** बनाम **मंगरू और अन्य**[1]) ।

पयार सिंह बनाम **नारायण दास और अन्य**[2] वाला मामला था जहां प्रत्यर्थियों ने यह आधार लिया था कि वे उस भूमि पर कुटुम्ब विभाजन में पृथक् कब्जे में थे जिसमें उन्होंने निर्माण किया था । उन्होंने यह भी कथन किया कि याची ने भी अपने कब्जे की भूमि पर अपने गृह का निर्माण किया था । प्रत्यर्थियों की दलीलों पर बल देते हुए, निर्णय के पैराग्राफ 12 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :–

> "12. प्रत्यर्थियों ने लिखित कथन में विनिर्दिष्टतः यह अभिवाक् किया है कि पक्षकार, कुटुम्ब व्यवस्थापन के अधीन पृथक्

---

[1] 2007 (1) नवीनतम एच. एल. जे. (एच. पी.) 413.

[2] (2010) 3 शिमला एल. सी. 205.

कब्जे में हैं । याची ने भी संयुक्त भूमि पर अपने गृह का निर्माण किया है । याची का आधार यह नहीं है कि प्रत्यर्थी ने उस क्षेत्र पर निर्माण किया है जो उनके हिस्से से अधिक है । प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि याची ने भूमि के बेहतर भाग पर अपने गृह का निर्माण किया है । प्रत्यर्थियों का निर्मित गृह राष्ट्रीय राजमार्ग 21 से दूर है जबकि याची का गृह राष्ट्रीय राजमार्ग 21 से सटे हुए है । प्रत्यर्थियों ने अपने निर्मित गृह के फोटोग्राफों को पुनरीक्षण की फाइल पर अभिलेख पर प्रस्तुत किया है । फोटोग्राफों से पहले से ही निर्मित याची के गृह और प्रत्यर्थियों के गृह के बीच पर्याप्त जगह उपदर्शित होती है जिसके ऊपर स्लैब रखा हुआ है । लिखित कथन में प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि वे कुटुम्ब व्यवस्थापन में भूमि के पृथक् कब्जे में हैं । इस तथ्य से प्रत्युत्तर फाइल करते हुए इनकार नहीं किया गया है । प्रत्यर्थियों ने कुटुम्ब व्यवस्थापन के अधीन वाद भूमि पर, अर्थात् जिस पर उन्होंने याचियों की सहमति से निर्माण किया है, के कब्जे के लिए दावा किया है । इस प्रकार, प्रत्यर्थियों ने अपने पक्ष में प्रथमदृष्ट्या मामला, सुविधा का संतुलन, अपूर्णणीय हानि को सिद्ध कर दिया है । इन परिस्थितियों में आक्षेपित निर्णय में कोई गलती नहीं पायी जा सकती है । पुनरीक्षण का क्षेत्र सीमित होता है जैसा कि मैनेजिंग डायरेक्टर (एम.आई.जी.), हिन्दुस्तान एयरोनोटिक्स लिमिटेड बालानगर, हैदराबाद और अन्य **बनाम** अजित प्रसाद टारवे, मैनेजर (परचेज एड स्टोर्स), हिन्दुस्तान एयरोनोटिक्स लिमिटेड, बाला नगर, हैदराबाद (ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 76) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । स्थायी प्रतिषेद्ध और आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद है । वाद में, पक्षकारों के अधिकार विनिश्चित होंगे । यह सिद्ध नहीं हुआ है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया मत अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों से उद्भूत नहीं होता है ।”

सह-अंशधारियों के अधिकारों और दायित्वों के बारे में विभिन्न निर्णयों पर इस न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ द्वारा **अशोक कपूर** बनाम **मूर्तू देवी**[1] वाले मामले में विचार किया गया था जिसमें निम्नलिखित सिद्धांत अधिकथित किए गए थे :–

> "41. उपर्युक्त निर्दिष्ट विभिन्न निर्णयों जिनमें इस उच्च न्यायालय के निर्णय भी सम्मिलित हैं, में परिगणित विधि की व्याख्या, जहां तक सह-स्वामियों के अधिकारों और दायित्वों का संबंध है, निम्नलिखित प्रतिपादनाएं उद्भूत होती हैं –
>
> 1. एक सह-स्वामी का सम्पूर्ण संपत्ति में हित होता है और इसके प्रत्येक भाग में भी उनका हित होता है ।
>
> 2. सह-स्वामियों द्वारा संयुक्त संपत्ति का कब्जा, विधि की दृष्टि में सभी का कब्जा होता है यद्यपि सभी या एक वस्तुतः कब्जे से बाहर होता है ।
>
> 3. संयुक्त संपत्ति में बड़े भाग या एक भाग का मात्र अधिभोग आवश्यक रूप से एक के कब्जे की बेदखली की कोटि में नहीं आता है जिसे सभी की ओर से कब्जा समझा जाता है ।
>
> 4. उपर्युक्त स्वीकृत नियम का एक अपवाद स्वीकार किया गया है, जब एक अन्य द्वारा सह-स्वामी की बेदखली की जाती है । किन्तु, सभी की ओर से संयुक्त कब्जे की नकारात्मक उपधारणा के अनुक्रम में, बेदखली के आधार पर एक सह-स्वामी का कब्जा न केवल अनन्य होना चाहिए अपितु, अन्यों की जानकारी में पक्षद्रोही भी होना चाहिए जब एक सह-स्वामी खुले रूप से अपने स्वयं के हक का प्राख्यान करता है और अन्यों के हक से इनकार करता है ।
>
> 5. समय बीतने के साथ उस सह-स्वामी का अधिकार

---

[1] 2016 (1) शिमला एल. सी. 207.

समाप्त नहीं होता है जो संयुक्त संपत्ति के कब्जे से बाहर हो गया है सिवाय बेदखली या परित्यक्त की दशा में ।

6. प्रत्येक सह-स्वामी को संयुक्त संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार होता है, स्वामी की तरीके से, जो अन्य सह-स्वामियों के उसी प्रकार के अधिकारों से असंगत नहीं होता है ।

7. जब एक सह-स्वामी अन्य सह-स्वामियों की सहमति से एक व्यवस्थापन के अधीन पृथक् खंड के कब्जे में होता है तो किसी को भी अन्यों की सहमति के बिना उस व्यवस्थापन पर विवाद उद्भूत करने के लिए खुला नहीं होता है सिवाय विभाजन के लिए वाद फाइल करके ।

8. एक सह-स्वामी जो कब्जे में नहीं है या संयुक्त संपत्ति के एक हिस्से के कब्जे में नहीं है, के लिए उपचार, विभाजन या वस्तुतः संयुक्त कब्जे के लिए वाद फाइल करने के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है । किन्तु बेदखली के माध्यम से नहीं । उसी प्रकार के, मामले जहां सह-स्वामी स्वयमेव ही अनन्य हक स्थापित करता है ।

9. जहां संयुक्त संपत्ति का विभाजन सह-स्वामियों की सामान्य सहमति द्वारा की जाती है वहां एक विशिष्ट सामान्य प्रयोजन के लिए आरक्षित होता है तो इसे सह-स्वामियों द्वारा असंगत उपयोगकर्ता की ओर मोड़ा नहीं जा सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो वह बेदखली के लिए दायी होगा और विशिष्ट खंड को इसके मूल दशा में पुनःस्थापित करने के लिए दायी होगा । यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे मामलों में यह दर्शित करना आवश्यक नहीं है कि विशेष क्षति कारित हुई है ।"

4(v). निसंस्देह, एक सह-स्वामी का कब्जा, अन्य सह-स्वामियों के कब्जे के रूप में अर्थान्वयन किया जाता है, तथापि, वर्तमान मामले के

तथ्य भिन्न हैं । सह-स्वामी, पारस्परिक सहमति द्वारा संयुक्त संपत्ति के पृथक्-पृथक् कब्जे में हैं । संयुक्त संपत्ति (वाद भूमि) में उनका पृथक् कब्जा एक दूसरे की सहमति से था । होशियार सिंह-वादी के पिता ने वाद संपत्ति के एक भाग पर निर्माण कर लिया था जो पारस्परिक व्यवस्थापन के निर्बंधनों के अनन्य कब्जे में था । होशियार सिंह ने भी खसरा संख्या 1952 और 1953 के संबंध में एक विल निष्पादित की थी, वाद संपत्ति जो सभी तीनों खसरा संख्याओं में से उसके अनन्य कब्जे में थी । इस विल के आधार पर नामांतरण का अनुप्रमाणन भी किया गया था । इस प्रकार, यह प्रकट होता है कि पक्षकार वाद संपत्ति के पृथक् भागों के कब्जे में थे । खसरा संख्या 1952 और 1953 होशियार सिंह-वादी के पिता के कब्जे में थे । होशियार सिंह ने एक रजिस्ट्रीकृत विल के अधीन खसरा संख्या 1952 पर एक गृह का निर्माण किया था । उसने खसरा संख्या 1952 के इस भाग का वसीयत अपनी पुत्रवधु श्रीमती सुरेष्ठा देवी को और खसरा संख्या 1952 और 1953 का शेष भाग की वसीयत वादी और श्रीमती सुरेष्ठा देवी के पक्ष में बराबर-बराबर हिस्सों में कर दी थी । वादी/सह-अंशधारक ने अपने अनन्य कब्जे की संयुक्त भूमि के एक भाग पर पहले से ही निर्माण कर लिया था । इन परिस्थितियों और अभिलेख पर के साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, वादी, अन्य सह-स्वामियों (प्रतिवादियों) को अपने हिस्से के निबंधनों में अपने अनन्य कब्जे में संयुक्त भूमि (खसरा संख्या 1955) के भाग पर निर्माण करने से अवरुद्ध नहीं कर सकता है क्योंकि ऐसा सुव्यवस्थित कब्जा राजस्व अभिलेखों में अभिलिखित है और पक्षकारों द्वारा स्वीकृत है ।

इसलिए, विधि के प्रश्नों का निम्नलिखित रूप से उत्तर दिया जाता है :–

> तथापि, सभी संयुक्त स्वामियों की सहमति से पक्षकारों के संयुक्त स्वामित्व में वाद भूमि अभिलिखित है, पक्षकार वाद भूमि के विभिन्न भागों पर सुव्यवस्थित कब्जे में थे । खसरा संख्या 1952 और 1953 वादी के पिता होशियार सिंह के पास था और

खसरा संख्या 1955 मूल प्रतिवादी संख्या 1 संतोख सिंह के पास था । वर्ष 1999-2000 के लिए राजस्व अभिलेख-जमाबंदी (प्रदर्श डी-1) में वाद भूमि पर पक्षकारों का पृथक् कब्जा दर्शित है । स्थल-नक्शा (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए) वादी द्वारा स्वीकृत है और उसके साक्षी (अभि. सा. 1) द्वारा साबित है और वाद भूमि पर पक्षकारों का सुव्यवस्थित पृथक् कब्जा भी साबित है । होशियार सिंह ने न केवल खसरा संख्या 1952 के भागों पर निर्माण उद्भूत किया था अपितु एक रजिस्ट्रीकृत विल (मार्क-एक्स) के अधीन इन दोनों खसरा संख्याओं (1952 और 1953) को अपने दो उत्तराधिकारियों, जिसमें वादी सम्मिलित है, के पक्ष में वसीयत कर दी थी । वादी और उसके साक्षियों ने अपने कथनों में प्रतिवादियों द्वारा ली गई प्रतिरक्षा को स्वीकार किया है । प्रदर्श पी.-1 और प्रदर्श पी.-2 पर जमाबंदियां वाद भूमि से संबंधित नहीं हैं, इसलिए, वे सुसंगत नहीं हैं । मामले के तथ्यों में वादी, व्यादेश के साम्यिक अनुतोष को पाने का हकदार नहीं है ।

पूर्वोक्त कारणों से, यह अपील स्वीकार की जाती है । विद्वान् जिला न्यायाधीश, द्रुतगामी न्यायालय, ऊना द्वारा 2008 की सिविल अपील संख्या 32 में पारित तारीख 16 मई, 2009 के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है ।

विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 2005 की सिविल वाद संख्या 242 में पारित तारीख 29 मार्च, 2008 के निर्णय और डिक्री को कायम रखा जाता है । परिणामतः, वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा फाइल वाद खारिज किया जाता है ।

द्वितीय अपील मंजूर की गई ।

क.

श्री दुर्गा सिंह

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य मार्फत सचिव (एचपीपीडब्ल्यूडी), शिमला-1 और अन्य

(2015 की सिविल रिट याचिका संख्या 4477)

तारीख 23 नवम्बर, 2021

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश सड़क अवसंरचना (संरक्षण) अधिनियम, 2002 की धारा 4 तथा भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 11] – रिट – राज्य द्वारा लोक प्रयोजन के लिए भूमि अधिगृहित करना – अधिगृहित भूमि का लोक प्रयोजन के उपयोग में लाना – अधिगृहित भूमि के संबंध में अधिसूचना जारी नहीं होना – अधिगृहित भूमि के एवज में कोई प्रतिकर संदाय नहीं करना – यदि कोई राज्य लोक प्रयोजन हेतु किसी भूमि का अधिग्रहण करता है और उस भूमि का उपयोग उस प्रयोजनार्थ उपयोग में लाया जाता है तो संबंधित अधिगृहित भूमि के लिए प्रतिकर संदाय करने का दायित्व राज्य का होगा – वह इस आधार पर प्रतिकर संदाय करने के दायित्व से बच नहीं सकता है कि संबंधित भूमि के संबंध में अधिसूचना जारी नहीं की गई है ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 7 दिसम्बर, 2006 को हिमाचल प्रदेश सड़क अवसंरचना (संरक्षण) अधिनियम, 2002 की धारा 4 के अधीन एक अधिसूचना जारी की गई थी । अधिसूचना के क्रम संख्या 6 पर गनहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए थी, जिसके लिए भूमि के विभिन्न टुकड़ों का प्रत्यर्थियों द्वारा प्रयोग किया जाना था । खसरा संख्या 170, 177, 288 और 180 इस अधिसूचना में गनहट्टी-अर्की के अधीन क्रम संख्या 26, 27, 29 और 31 पर अंकित मौजा चालहोज से संबंधित थे । प्रश्नगत भूमि सड़क की मार्गरेखा के भीतर आती है,

तथापि, इसे अर्जित नहीं किया गया है । इसलिए, प्रश्नगत सड़क के विनिर्माण के लिए प्रत्यर्थियों-राज्य द्वारा उपयोग की गई भूमि के बारे में स्वामियों को कोई प्रतिकर संदत्त नहीं किया गया था । खसरा संख्या 170 और 177 भी, जो सड़क मार्गरेखा में आती है, याची के साथ श्री रामेश्वर लाल द्वारा सह-स्वामित्व में धारित थी । उक्त रामेश्वर लाल ने वर्ष 2005 में खसरा संख्या 170 और 177 के संबंध में हिमाचल प्रदेश राज्य के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश के लिए एक सिविल संस्थित किया गया था । प्रत्यर्थियों-राज्य ने इसमें के वादी को यह आश्वस्त किया था कि वाद भूमि अर्थात् खसरा संख्या 170 और 177 के संबंध में भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना शीघ्र ही जारी की जाने वाली है । इस आश्वासन के आधार पर, वादी रामेश्वर लाल ने तारीख 13 मार्च, 2006 को सिविल वाद वापस ले लिया था । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थियों द्वारा खसरा संख्या 170 और 177 के संबंध में अर्जन कार्यवाहियां आरम्भ हुई थीं । इन दोनों खसरा संख्याओं के लिए भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 11 के अधीन तारीख 30 सितम्बर, 2011 को अधिनिर्णय संख्या 55/2011 पारित हुआ था । याची के साथ ही रामेश्वर लाल अर्थात् दोनों सह-स्वामियों को इन दोनों खसरा संख्याओं अर्थात् 170 और 177 के अर्जन के लिए प्रतिकर संदत्त किए गए थे । तारीख 21 फरवरी, 2012 को याची ने प्रत्यर्थियों को यह अभ्यावेदन दिया कि खसरा संख्या 180 और 288, अनन्य रूप से उसके द्वारा धारित है और जो मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में स्थित है जिसका उपयोग भी उनके द्वारा गनहट्टी-नलहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए किया गया है । तथापि, इस भूमि के लिए उसे प्रतिकर नहीं दिया गया है । कोई उत्तर प्राप्त नहीं होने पर, याची ने तारीख 19 मार्च, 2013 और तारीख 10 मई, 2013 को प्रत्यर्थियों को विधिक नोटिस जारी किया । उसने खसरा संख्या 180 और 288 में समाविष्ट अपनी भूमि, जिसकी कुल माप 0-04-53 हेक्टेयर थी, के अर्जन के संबंध में प्रत्यर्थी-विभाग के संबंधित कर्मचारियों के साथ पत्राचार भी किया था । प्रत्यर्थियों द्वारा यह उत्तर दिया गया था कि यद्यपि, सड़क का विनिर्माण प्रश्नगत भूमि पर हुआ है, तथापि, उसे अर्जित नहीं किया गया है, इसलिए, भूमि अर्थात् खसरा संख्या 180 और

288 के अर्जन के लिए याची को कोई प्रतिकर संदत्त नहीं किया जा सकता है । इससे व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की । न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह तथ्य कि खसरा संख्या 180 अनन्य रूप से याची द्वारा धारित है जिसका प्रत्यर्थियों द्वारा गनहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग किया गया है, जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा रिट याचिका में फाइल अपने उत्तर में ऋजुतः स्वीकार किया है । वादी ने भी वर्ष 2007-2008 के लिए जमाबंदी (उपाबंध पी 6) को अभिलेख पर प्रस्तुत किया है जहां 'गैर-मुमकिन सड़क' को खसरा संख्या 180 के ऊपर निर्मित होना दर्शित किया गया है । प्रत्यर्थियों के अनुसार, प्रश्नगत सड़क वर्ष 1983 के दौरान निर्मित हुई थी जबकि याची के अनुसार उसे वर्ष 2006 में निर्मित और पूरा किया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने विद्या देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि विलम्ब और अत्यधिक विलम्ब के आधार को वाद-हेतुक जारी रहने के मामले में उद्धृत नहीं किया जा सकता है । राज्य को, इसमें के अपीलार्थी की भूमि का सड़क विनिर्माण के लिए उपयोग करने के संबंध में प्रतिकर संदाय करने का निर्देश दिया गया था । वर्तमान मामले में, याची द्वारा धारित खसरा संख्या 180 स्वीकृततः प्रत्यर्थियों द्वारा गनहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग किया गया है, इसलिए, उपर्युक्त चर्चा में विधि के विनिश्चयाधार का अनुसरण करते हुए, भूमि इस खसरा संख्या के भीतर आती है जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा याची को देय और ग्राह्य प्रतिकर संदाय करते हुए, विधि के अनुसरण में अर्जित किया जाना अपेक्षित है । प्रत्यर्थियों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे आज से छह सप्ताह के भीतर मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में स्थित खसरा संख्या 180, माप 0-03-48 हैक्टेयर भूमि का अर्जन करने के लिए विधि के अनुसरण में कदम उठाएं । याचियों के लिए भी यह खुला होगा कि वे 'गैर-मुमकिन सड़क' की मौजूदा राजस्व प्रविष्टि के निरसन के पश्चात् उसे याची के स्वामित्व और कब्जे में अभिलिखित करने के लिए खसरा संख्या 288 के

संबंध में राजस्व प्रविष्टियों में सुधार के लिए कदम उठाएं । लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, को भी निपटाया जाता है । [पैरा 5 और 5(ii)]

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल रिट याचिका संख्या 4477.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री रोमेश वर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री शिवानी शर्मा, अपर महाधिवक्ता के साथ कुनाल ठाकुर और विक्रांत चंडेल, उप-महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ – वर्तमान याचिका में याची द्वारा यह शिकायत का गई है कि उसके द्वारा धारित भूमि, जो खसरा संख्या 180 और 288 स्थित, मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में समाविष्ट है, में प्रत्यर्थी द्वारा गनहट्टी-नलहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग किया जा रहा है, तथापि, उनके द्वारा उसके बदले में उसे कोई प्रतिकर संदत्त नहीं किया गया है ।

2. याची का मामला यह है कि –

2(i). प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 7 दिसम्बर, 2006 को हिमाचल प्रदेश सड़क अवसंरचना (संरक्षण) अधिनियम, 2002 की धारा 4 के अधीन एक अधिसूचना जारी की गई थी । अधिसूचना के क्रम संख्या 6 पर गनहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए थी, जिसके लिए भूमि के विभिन्न टुकड़ों का प्रत्यर्थियों द्वारा प्रयोग किया जाना था । खसरा संख्या 170, 177, 288 और 180 इस अधिसूचना में गनहट्टी-अर्की के अधीन क्रम संख्या 26, 27, 29 और 31 पर अंकित मौजा चालहोज से संबंधित थे ।

2(ii). प्रश्नगत भूमि सड़क की मार्गरेखा के भीतर आती है, तथापि, इसे अर्जित नहीं किया गया है । इसलिए, प्रश्नगत सड़क के विनिर्माण के लिए प्रत्यर्थियों-राज्य द्वारा उपयोग की गई भूमि के बारे में स्वामियों को कोई प्रतिकर संदत्त नहीं किया गया था । खसरा संख्या 170 और 177 भी, जो सड़क मार्गरेखा में आती है, याची के साथ श्री रामेश्वर

लाल द्वारा सह-स्वामित्व में धारित थी । उक्त रामेश्वर लाल ने वर्ष 2005 में खसरा संख्या 170 और 177 के संबंध में हिमाचल प्रदेश राज्य के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश के लिए एक सिविल संस्थित किया गया था । प्रत्यर्थियों-राज्य ने इसमें के वादी को यह आश्वस्त किया था कि वाद भूमि अर्थात् खसरा संख्या 170 और 177 के संबंध में भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना शीघ्र ही जारी की जाने वाली है । इस आश्वासन के आधार पर, वादी रामेश्वर लाल ने तारीख 13 मार्च, 2006 को सिविल वाद वापस ले लिया था । वापस लेने के कारण रामेश्वर लाल द्वारा फाइल सिविल वाद खारिज करने वाला तारीख 13 मार्च, 2006 का आदेश निम्नलिखित है :–

> 'दो साक्षी उपस्थित हुए और उनकी परीक्षा हुई । वादी ने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य कथन को ध्यान में रखते हुए अपना पृथक् कथन यह अभिलिखित किया है कि वाद भूमि के एलएओ के समक्ष प्रक्रिया लम्बित है और भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना अधिसूचित की जानी वाली है । इस कारण से वह इस मामले में कार्यवाही नहीं चाहता है और यह प्रार्थना की है कि इसे वापस लेने के कारण खारिज कर दिया जाए । वादी के कथन को ध्यान में रखते हुए, यह वाद वापस लेने के कारण खारिज किया जाता है । सम्यक् समापन के पश्चात् फाइल अभिलेख कक्ष के लिए समनुदेशित किया जाता है ।'

2(iii). तत्पश्चात्, प्रत्यर्थियों द्वारा खसरा संख्या 170 और 177 के संबंध में अर्जन कार्यवाहियां आरम्भ हुई थीं । इन दोनों खसरा संख्याओं के लिए भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 11 के अधीन तारीख 30 सितम्बर, 2011 को अधिनिर्णय संख्या 55/2011 पारित हुआ था । याची के साथ ही रामेश्वर लाल अर्थात् दोनों सह-स्वामियों को इन दोनों खसरा संख्याओं अर्थात् 170 और 177 के अर्जन के लिए प्रतिकर संदत्त किए गए थे ।

2(iv). तारीख 21 फरवरी, 2012 को याची ने प्रत्यर्थियों को यह अभ्यावेदन दिया कि खसरा संख्या 180 और 288, अनन्य रूप से उसके द्वारा धारित है और जो मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में स्थित है जिसका उपयोग भी उनके द्वारा गनहट्टी-नलहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए किया गया है । तथापि, इस भूमि के लिए उसे प्रतिकर नहीं दिया गया है । कोई उत्तर प्राप्त नहीं होने पर, याची ने तारीख 19 मार्च, 2013 और तारीख 10 मई, 2013 को प्रत्यर्थियों को विधिक नोटिस जारी किया । उसने खसरा संख्या 180 और 288 में समाविष्ट अपनी भूमि, जिसकी कुल माप 0-04-53 हेक्टेयर थी, के अर्जन के संबंध में प्रत्यर्थी-विभाग के संबंधित कर्मचारियों के साथ पत्राचार भी किया था । प्रत्यर्थियों द्वारा यह उत्तर दिया गया था कि यद्यपि, सड़क का विनिर्माण प्रश्नगत भूमि पर हुआ है, तथापि, उसे अर्जित नहीं किया गया है, इसलिए, भूमि अर्थात् खसरा संख्या 180 और 288 के अर्जन के लिए याची को कोई प्रतिकर संदत्त नहीं किया जा सकता है ।

3. उपर्युक्त पृष्ठभूमि यह है कि याची ने निम्नलिखित सारवान् अनुतोषों की प्रार्थना करते हुए, वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है :–

> "(ii) कि याची के पक्ष में और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध समुचित आदेश और निर्देश जारी किया जा सकता है कि चूंकि उन्होंने मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में स्थित खसरा संख्या 180 के साथ ही 288 में समाविष्ट याची की भूमि का उपयोग किया है, इसलिए, समुचित विधिक कार्यवाहियां संस्थित की जा सकती हैं और उसे अंतिमता दी जा सकती है और विधि के अनुसार उसे प्रतिकर की रकम संदत्त की जा सकती है । इस प्रयोजन के लिए उन्हें और विलम्ब किए बिना अर्जन कार्यवाहियां पूरी करने का निर्देश जारी किया जा सकता है ।
>
> (iii) कि यदि प्रत्यर्थी अभी भी यह दावा करते हैं कि उन्होंने मौजा चालहोज में स्थित खसरा संख्या 288 के क्षेत्र को अर्जित नहीं किया है तो ऐसी दशा में आवश्यक आदेश जारी किया जा सकता है, जिससे कि याची से संबंधित भूमि जो भी प्रत्यर्थियों द्वारा कब्जे में ली गई है, को पुनः बहाल किया जा सके और

उसका भौतिक कब्जा याची को सौंपा जाए और विधि के अनुसरण में, प्रत्यर्थियों द्वारा वर्ष 2006 से अवैध कब्जे की तारीख तक की अवधि के लिए क्षतिपूर्ति की रकम का संदाय करने का निर्देश दिया जा सकता है ।"

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि प्रत्यर्थियों ने याची द्वारा धारित भूमि खसरा संख्या 180 और 288 में समाविष्ट जो मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में स्थित है, को गनहट्टी-नलहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग किया है । तथापि, इस भूमि को विधि के अनुसरण में प्रत्यर्थियों द्वारा अर्जित नहीं किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का अवलंब लेते हुए, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याची उसकी सुरक्षित भूमि को वापस नहीं ले सकते हैं सिवाय विधि के अनुसरण में और चूंकि प्रत्यर्थियों ने उसकी भूमि का उपयोग किया है, इसलिए, भूमि विधि के अनुसरण में अर्जित किया जाना अपेक्षित है और याची को प्रतिकर संदत्त किए जाने का दायित्व है ।

याचिका का विरोध करते हुए, विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि याची ने अत्यधिक विलम्ब के पश्चात् भूमि के अर्जन का विवाद्यक उद्भूत किया है । रिट याचिका विलम्ब और अत्यधिक अवधि बीत जाने के आधार पर कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

5. इस याचिका में अन्तर्वलित दो खसरा संख्याओं पर विभिन्न शीर्षकों के अधीन इसमें इसके पश्चात् विचार किया जाना है –

"5(i). **खसरा संख्या 180**

5(i)(क). प्रत्यर्थियों ने यह विवादित नहीं किया है कि गनहट्टी-अर्की सड़क खसरा संख्या 180 से होकर जा रही है और यह कि उन्होंने प्रश्नगत सड़क के विनिर्माण के लिए याची द्वारा अनन्य रूप से धारित खसरा संख्या 180 का उपयोग किया है । वस्तुतः याची ने भी कार्यपालक अभियन्ता, शिमला, ग्रामीण खंड, एचपी पीडब्ल्यूडी, धामी के कार्यालय से याची को अग्रेषित तारीख 11 दिसम्बर, 2014 की एक संसूचना (उपाबंध पी-19) को अभिलेख पर प्रस्तुत किया है जिसमें यह

कथन है कि खसरा संख्या 180 के लिए अर्जन कार्यवाहियां आरम्भ की गई हैं क्योंकि सड़क इस खसरा संख्या से पार होकर जानी है । इस पत्र के सुसंगत अन्तर्वस्तुओं को उद्धृत करना समुचित होगा –

'श्री दुर्गा सिंह पुत्र श्री अभिराम,
निवासी ग्राम चालहोज,
पोस्ट आफिस सकराह,
तहसील और जिला शिमला,
हिमाचल प्रदेश

विषय – सूचना के अधिकार अधिनियम के अधीन श्री दुर्गा सिंह पुत्र श्री अभिराम, निवासी ग्राम चालहोज, पोस्ट आफिस सकराह, तहसील और जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 9 के अधीन अधिसूचना की प्रतिलिपि के साथ ही ग्राम चालहोज पर सड़क विनिर्माण के लिए भूमि के अर्जन के संबंध में पारित अधिनिर्णय की प्रतिलिपि प्रदान करने के संबंध में ।

उपर्युक्त उद्धृत विषय पर आपके आवेदन संख्या शून्य, तारीख शून्य, के संदर्भ में, जिसके द्‌वारा आपने अपेक्षित सूचना देने की ईप्सा की है । इस संबंध में, यह सूचित किया जाता है कि अर्जन कार्यवाहियां मात्र खसरा संख्या 180 के लिए आरम्भ की गई हैं क्योंकि सड़क मात्र इस खसरा संख्या से होकर जानी है । अनिवार्यता प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए एस डी एम (ग्रामीण) के पास राजस्व कागजात पत्र संख्या जे एस डी/सी-1/2014-15-1355-56, तारीख 8 दिसम्बर, 2014 के द्‌वारा भेजे गए हैं जिसमें खसरा संख्या 288 में आने वाली भूमि को इस विभाग द्‌वारा अर्जित करना अपेक्षित नहीं है जैसा कि इस कार्यालय के पत्र संख्या 5158-59, तारीख 28 अगस्त, 2014 के माध्यम से आपको पहले ही सूचित किया जा चुका है ।

कार्यपालक अभियन्ता,
शिमला ग्रामीण खंड,
एचपी पीडब्ल्यूडी, धामी

संलग्नक – यथा उपर्युक्त

1. सहायक अभियन्ता, जुतोघ, उप-खंड, एचपी पीडब्ल्यूडी, जुतोघ उनके पत्र संख्या 1369, तारीख 10 दिसम्बर, 2014 को लिखित सूचना के लिए प्रति ।

2. पी. आई. ओ.-सह-कार्यपालक अभियन्ता (एम एण्ड पी), निर्माण भवन, निगम विहार, एचपी पीडब्ल्यूडी, शिमला-171002 उनके पत्र संख्या 8876-78, तारीख 21 नवम्बर, 2017 को लिखे पत्र के लिए प्रति ।'

5(i)(ख). यह तथ्य कि खसरा संख्या 180 अनन्य रूप से याची द्वारा धारित है जिसका प्रत्यर्थियों द्वारा गनहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग किया गया है, जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा रिट याचिका में फाइल अपने उत्तर में ऋजुतः स्वीकार किया गया है । गुणागुणों पर उत्तर का पैरा 9 निम्नलिखित है :–

'कि याचिका के इस पैरा की अंतर्वस्तुएं अभिलेख की विषय हैं, अतएव विवादित नहीं हैं । तथापि, यह आदरपूर्वक निवेदन किया जाता है कि प्रत्यर्थी-विभाग ने तारीख 7 दिसम्बर, 2013 को संबंधित भूमि का सीमांकन किया था जिससे यह स्पष्टतः दर्शित होता है कि सड़क मात्र खसरा संख्या 180 से होकर जानी है और न कि खसरा संख्या 288 से होकर जानी है । यह भी निवेदन किया गया है कि आर. के. कटोच, कनिष्ठ अभियन्ता के तारीख 7 दिसम्बर, 2013 के कथनानुसार, यह स्पष्टतः दर्शित होता है कि राजस्व अभिलेख में खसरा संख्या 288 को गैर-मुमकिन सड़क के रूप में दर्शित है तथापि, साईट के अनुसार खसरा संख्या 288 घसनी है और इस कथन के अनुसार उसका सुधार याची द्वारा राजस्व अभिकरण से नहीं कराया जा सकता है ।'

वादी ने भी वर्ष 2007-2008 के लिए जमाबंदी (उपाबंध पी-6) को अभिलेख पर प्रस्तुत किया है जहां 'गैर-मुमकिन सड़क' को खसरा संख्या 180 के ऊपर निर्मित होना दर्शित किया गया है । प्रत्यर्थियों के अनुसार, प्रश्नगत सड़क वर्ष 1983 के दौरान निर्मित

हुई थी जबकि याची के अनुसार उसे वर्ष 2006 में निर्मित और पूरा किया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने विद्या देवी **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य [(2020) 2 एस. सी. सी. 569] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि विलम्ब और अत्यधिक विलम्ब के आधार को वाद-हेतुक जारी रहने के मामले में उद्भूत नहीं किया जा सकता है । राज्य को, इसमें के अपीलार्थी की भूमि का सड़क विनिर्माण के लिए उपयोग करने के संबंध में प्रतिकर संदाय करने का निर्देश दिया गया था । निर्णय का सुसंगत पैरा निम्नलिखित है –

> '12.1. वर्ष 1967 में अपीलार्थी की संपत्ति बलपूर्वक जब्त कर ली गई थी, जबकि संपत्ति का अधिकार, संविधान के भाग 3 के अनुच्छेद 31 द्वारा गारंटी मौलिक अधिकार था । अनुच्छेद 31 प्राइवेट संपत्ति के अधिकार की गारंटी देता है जिससे विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना और उचित और ऋजु प्रतिकर के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है ।
>
> 12.2. संपत्ति के अधिकार को संविधान (44वां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया, तथापि, यह कल्याणकारी राज्य में मानवाधिकार के रूप में बना रहा और संविधान के अनुच्छेद 300-क के अधीन यह एक सांविधानिक अधिकार है । अनुच्छेद 300-क में यह उपबंध है कि विधि के प्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा । राज्य एक नागरिक को उसकी संपत्ति से बे-कब्जा नहीं कर सकता है सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण में । यद्यपि, अनुच्छेद 300-क में अभिव्यक्त तौर पर प्रतिकर संदाय करने की बाध्यता नहीं है फिर भी उस अनुच्छेद से ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।
>
> 12.9. विधि शासन द्वारा शासित लोकतांत्रिक नीति यह है कि राज्य विधि की मंजूरी के बिना किसी नागरिक को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं कर सकता है । तुकाराम काना

जोशी **बनाम** एम. आई. डी. सी. वाले मामले में, इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य को अर्जन, प्रार्थना या किसी अन्य अनुज्ञेय कानूनी तरीके के लिए प्रक्रिया का अवश्य ही अनुपालन करना चाहिए । राज्य, कल्याणकारी राज्य होने के नाते विधि शासन द्वारा शासित होता है, इसलिए, राज्य स्वयं अपनी प्रास्थिति में स्वाभिमानी नहीं हो सकता है जैसा कि संविधान द्वारा उपबंधित है ।

12.12. राज्य द्वारा न्यायालय में अपीलार्थी को विलम्ब और अतिविलम्ब से आने वाली दलील भी नामंजूर किए जाने योग्य है । विलम्ब और अतिविलम्ब की दलील को वाद-हेतुक के निरन्तर जारी रहने के मामले में उद्भूत नहीं किया जा सकता है या यदि परिस्थितियां ऐसी हैं जब न्यायालय की न्यायिक सचेतना को आघात पहुंचाती है । विलम्ब की माफी न्यायिक विवेकाधिकार का मामला होता है जिसका प्रयोग मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आवश्यक रूप से न्यायिक तौर पर और युक्तियुक्त रूप से किया जाना चाहिए । यह मौलिक अधिकारों के अतिलंघन और दावाकृत उपचार और कब और कैसे विलम्ब उद्भूत हुआ, पर निर्भर करेगा । न्यायालयों को सारभूत न्याय करने के लिए अपनी सांविधानिक अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए कोई परिसीमा अवधि विहित नहीं है ।'

हरि कृष्णा मंदिर ट्रस्ट **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और अन्य [(2020) 9 एस. सी. सी. 356] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था –

"96. संपत्ति का अधिकार, अब मौलिक अधिकार के रूप में नहीं हो सकता है किन्तु, यह अब भी अनुच्छेद 300-क के अधीन सांविधानिक अधिकार और मानवाधिकार के रूप में बना हुआ है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा बिमला बेन

अजित भाई पटेल **बनाम** वत्सलाबेन अशोक भाई पटेल वाले मामले में मत व्यक्त किया था । संविधान के अनुच्छेद 300-क के समादेश को ध्यान में रखते हुए, किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से विधि के प्राधिकार के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है । अपीलार्थी ट्रस्ट को विधि के अनुसरण में ही उसकी संपत्ति से वंचित किया जा सकता है ।

97. संविधान के अनुच्छेद 300-क में सर्वोपरि अधिकार का सिद्धांत समाहित है जिसमें दो भाग समाविष्ट हैं (i) लोकहित में संपत्ति का कब्जा और (ii) युक्तियुक्त प्रतिकर का संदाय । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कई विनिश्चयों, जिनमें बिहार राज्य **बनाम** प्रोजेक्ट उच्च विद्या, शिक्षा संघ, जेलूभाई नानभाई कोचर **बनाम** गुजरात राज्य, बिशम्भर दयाल चन्द्र मोहन **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले सम्मिलित हैं, में अभिनिर्धारित किया है कि राज्य को लोक फायदे के लिए स्वामी की संपत्ति को लेने या नियंत्रण करने की शक्ति होती है । तथापि, जब राज्य ऐसा करता है तो राज्य पर ऐसी क्षति के लिए उचित प्रतिकर देने की बाध्यता होती है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा गिरनार ट्रेडर्स **बनाम** महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

100. उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते समय न केवल परमादेश या परमादेश की प्रकृति की रिट जारी करने की शक्ति है अपितु, उन मामलों में ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सम्यक् रूप से आबद्ध हैं जहां सरकार या लोक प्राधिकारी स्वयं को प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग करने में असफल रहते हैं या गलत तौर पर प्रयोग करते हैं, जो संविधि या नियम या सरकार की नीति विनिश्चय या ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग दुर्भावनापूर्ण तरीके से या असंगत विचार पर करते हैं ।”

राजकुमार **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य [2014 की एसएलपी सं. 2372, विनिश्चय तारीख 29 अक्तूबर, 2015] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने राज्य की इस दलील को नामंजूर कर दिया कि यदि भू-स्वामी कोई आक्षेप उद्भूत नहीं करते हैं और स्वैच्छिक तौर पर अपनी भूमियों को पीएमजीएसवाई के अधीन सड़क विनिर्माण के लिए दान कर देते हैं तो वे प्रतिकर की ईप्सा करते हुए, न्यायालय के समक्ष नहीं आ सकते हैं । मामले में निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए थे –

> "(1) उपायुक्त-कलक्टर, सोलन सर्वे संख्या में से प्रश्नगत सड़क के विनिर्माण के लिए भूमि उपयोग की ठीक सीमा का सत्यापन और अवधारण करेगा जिसमें अपीलार्थी अंश धारित करता है और तद्द्वारा भूमि की ठीक सीमा अवधारित करेगा जिससे अपीलार्थी ऐसे निर्माण/उपयोग के कारण प्रतिकर पाने से वंचित हो गया है ।
>
> (2) उस भूमि की सीमा अवधारित करने के उपरान्त जिसके लिए अपीलार्थी प्रश्नगत सड़क के निर्माण के कारण प्रतिकर पाने से वंचित हो गया है, उपायुक्त उसे देय प्रतिकर की रकम अवधारित करेगा जो अन्य स्वामियों, जिनमें कनवर सिंह की भूमि का वर्गीकरण हुआ है, के पक्ष में उसी सड़क के लिए अर्जित भूमि के संबंध में 2008 की अधिनिर्णय संख्या 10 में प्रतिकर के बारे में रकम अवधारित हुई है ।
>
> (3) इस प्रकार, देय रकम को अवधारित करने के उपरान्त, उपायुक्त अवधारण पूरा होने की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर उक्त रकम का वितरण करेगा । इस प्रकार, अवधारित बकाया रकम का संदाय नियत की जाएगी और अपीलार्थी को देय बकाया रकम का सड़क विनिर्माण के लिए उपयोग की गई भूमि के मूल्य के बारे में उसके सभी दावों का पूर्ण और अंतिम रूप से व्यवस्थापन किया जाएगा । तथापि, यदि अवधारण के पश्चात् भी संदाय, इस प्रकार

नियत अवधि के भीतर नहीं किया जाता है तो इस प्रकार अवधारित रकम पर तीन माह की अवधि समाप्त होने की तारीख से प्रतिवर्ष 12 प्रतिशत ब्याज लगना आरम्भ हो जाएगा ।”

राज्य द्वारा संस्थित हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** भूप राम [2017 की एलपीए सं. 79] वाले मामले को **राजकुमार** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अनुसरण करते हुए, खारिज कर दिया गया था । हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** लईक राम डोगरा [2014 की एलपीए सं. 12] में तारीख 23 मार्च, 2021 को पारित निर्णय का यही प्रभाव है, जिसमें राज्य द्वारा फाइल अपील को खारिज करते समय कोई खर्चा विनिश्चित नहीं किया गया था । इसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था –

“13. पूर्वोक्त निर्णय का परिशीलन करने से यह स्पष्ट है कि संपत्ति का अधिकार एक मौलिक अधिकार नहीं है, तथापि, यह कल्याणकारी राज्य में एक मानवाधिकार है और संविधान के अनुच्छेद 300-क के अधीन एक सांविधानिक अधिकार है और किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है और राज्य विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना किसी नागरिक को उसकी संपत्ति से बे-कब्जा नहीं कर सकता है ।

14. विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया यह है कि यदि किसी व्यक्ति की भूमि सड़क इत्यादि के विनिर्माण के लिए अर्जित की जाती है तो वह प्रतिकर पाने का हकदार है, क्योंकि संपत्ति का अधिकार एक मानवाधिकार है ।

15. जैसा कि उपर्युक्त चर्चा की गई है, जब एक बार राज्य द्वारा पीएमजीएसवाई के अधीन भूमि अर्जन की अनुपलब्धता के संबंध में अभिवाक् उद्भूत कर दिया जाता है, जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **राजकुमार** (उपर्युक्त)

वाले मामले में नामंजूर कर दिया जाता है और इसके पश्चात् इस न्यायालय द्वारा **भूप राम** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी नामंजूर कर दिया जाता है तो अपीलार्थी-राज्य के लिए यह खुला नहीं होता है कि वह उसी समय और पुनः उसी अभिवाक् को उद्भूत कर सके । वर्तमान अपील अपीलार्थियों द्वारा विवेक लागू किए बिना फाइल किया जाना प्रतीत होता है ।

16. पूर्वोक्त चर्चा/मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए, अपील खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार इसे रु. 50,000/- खर्चे सहित खारिज किया जाता है । जिसे अपीलार्थियों-पीडब्ल्यूडी विभाग द्वारा अधिवक्ता कल्याण निधि में जमा करते हुए, संदत्त किया जाएगा ।"

तारीख 6 अप्रैल, 2019 के उनके निर्देश मामले के अभिलेख पर रखे गए हैं, प्रत्यर्थियों ने यह निवेदन किया है कि "मात्र खसरा संख्या 180 ही सड़क के संरेखण के भीतर आती है । चूंकि याची ने माननीय न्यायालय के समक्ष सिविल रिट याचिका फाइल की है, इसलिए, खसरा संख्या 180 माप 0-03-48 हेक्टेयर भूमि को अर्जित करने की अर्जन कार्यवाहियां माननीय उच्च न्यायालय में मामला लंबित रहने के कारण रोक दी गई है" । यह याचिका में पारित तारीख 5 जुलाई, 2019 के आदेश में प्रलक्षित होता है ।

चूंकि, वर्तमान मामले में, याची द्वारा धारित खसरा संख्या 180 स्वीकृततः प्रत्यर्थियों द्वारा गनहट्टी-अर्की सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग किया गया है, इसलिए, उपर्युक्त चर्चा में विधि के विनिश्चयाधार का अनुसरण करते हुए, भूमि इस खसरा संख्या के भीतर आती है जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा याची को देय और ग्राह्य प्रतिकर संदाय करते हुए, विधि के अनुसरण में अर्जित किया जाना अपेक्षित है ।

5(ii). **खसरा संख्या 288**

तथ्यों के आधार पर, विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि खसरा संख्या 288, जो याची द्वारा धारित है, को प्रत्यर्थियों द्वारा प्रश्नगत सड़क के विनिर्माण के लिए उपयोग नहीं किया गया है और यह भी कि प्रत्यर्थी का आशय इस खसरा संख्या का उपयोग करने का नहीं है । वस्तुतः, इस संबंध में विनिर्दिष्ट निवेदनों को तारीख 22 नवम्बर, 2021 के आदेश में उल्लिखित किया गया, जो निम्नलिखित है –

> "विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने निदेशों के आधार पर यह निवेदन किया है कि प्रश्नगत खसरा संख्या 288 न तो प्रत्यर्थियों/विभाग के कब्जे में है न ही उनका आशय उसका उपयोग करने का है । उनके निवेदन पर तारीख 23 नवम्बर, 2021 को मामला सूचीबद्ध किया जाता है ।"

राजस्व अभिलेख अर्थात् वर्ष 2007-2008 के लिए जमाबंदी (उपाबंध पी-3) में, खसरा संख्या 288 के विरुद्ध 'गैर-मुमकिन सड़क' की प्रविष्टि मौजूद है ।

हरि कृष्णा मंदिर ट्रस्ट (उपर्युक्त) वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपांतरण जिनमें प्राइवेट सड़क धारक के रूप में पुणे नगर निगम का नाम निरसित करना सम्मिलित है, मंजूर कर लिया था, इसमें के पक्षकारों द्वारा लिए गए इस आधार को ध्यान में रखते हुए कि प्रविष्टि का निरसन एक सूक्ष्म उपांतरण था । वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों-विभाग ने स्पष्टतः यह कथन किया है कि वे न तो खसरा संख्या 288 के कब्जे में हैं न ही प्रश्नगत सड़क इस खसरा संख्या पर उनके द्वारा विनिर्माण किया गया है न ही वे इसका उपयोग करने के लिए आशयित हैं । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष यह कथन किया कि प्रत्यर्थियों को खसरा संख्या 288 के संबंध में राजस्व प्रविष्टि में सुधार करने के लिए कोई आपत्ति नहीं है जो इस खसरा संख्या

के विरुद्ध 'गैर-मुमकिन सड़क' की मौजूदा प्रविष्टि के निरसन के पश्चात् याची की स्वामित्व और कब्जे में अभिलिखित किया जाना है । इसलिए गए आधार को ध्यान में रखते हुए, याची के लिए यह खुला होगा कि वह खसरा संख्या 288 के संबंध में राजस्व प्रविष्टियों में सुधार के लिए विधि के अनुसरण में समुचित कदम उठाए ।

उपर्युक्त चर्चा के प्रकाश में, यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । प्रत्यर्थियों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे आज से छह सप्ताह के भीतर मौजा चालहोज, तहसील और जिला शिमला में स्थित खसरा संख्या 180, माप 0-03-48 हेक्टेयर भूमि का अर्जन करने के लिए विधि के अनुसरण में कदम उठाएं । याचियों के लिए भी यह खुला होगा कि वे 'गैर-मुमकिन सड़क' की मौजूदा राजस्व प्रविष्टि के निरसन के पश्चात् उसे याची के स्वामित्व और कब्जे में अभिलिखित करने के लिए खसरा संख्या 288 के संबंध में राजस्व प्रविष्टियों में सुधार के लिए कदम उठाएं । लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हों, को भी निपटाया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

क.

निर्मला देवी

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

(2021 की सिविल रिट याचिका सं. 4373)

तारीख 25 नवम्बर, 2021

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 123 और धारा 130(3)] – रिट – अचल सम्पत्ति का विभाजन – विभाजन का तरीका नियत किया जाना – विभाजन नियत तरीके से किया जाना – आक्षेप – यदि किसी अचल सम्पत्ति का विभाजन न्यायालय द्वारा नियत तरीके के अनुसार किया जाता है और विभाजन का तरीका नियत करने की कार्यवाही में सभी पक्षों को सम्मिलित होने और अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है और उसके बाद नियत तरीके से सम्पत्ति का विभाजन कर दिया जाता है तो बाद में सम्बन्धित पक्षकारों को उस पर आक्षेप करने का हक नहीं होता है ।

वर्तमान मामले में, तारीख 4 मार्च, 2009 को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, चम्बा (संक्षेप में जिसे ए. सी. प्रथम श्रेणी कहा गया है) ने स्टाम्प कागजों पर विभाजन दस्तावेज तैयार करने के लिए आदेश दिया था । इस आदेश को कलक्टर, चम्बा, जिन्होंने तारीख 24 अगस्त, 2009 के आदेश द्वारा अपील खारिज कर दी थी, के समक्ष याची संख्या 1 द्वारा चुनौती दी गई थी । कलक्टर द्वारा पारित आदेश को सभी तीनों याचियों द्वारा पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से प्रभागीय आयुक्त, कांगड़ा प्रभाग के समक्ष चुनौती दी गई थी । यह पुनरीक्षण याचिका भी तारीख 2 जुलाई, 2011 को खारिज कर दी गई थी । इसके पश्चात् याचियों ने वित्त आयुक्त (अपील), हिमाचल प्रदेश के समक्ष द्वितीय

पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की । यह पुनरीक्षण याचिका भी तारीख 30 जनवरी, 2014 को खारिज कर दी गई । इससे व्यथित होकर, याचियों ने राजस्व प्राधिकारियों द्वारा पारित सभी आदेशों को आक्षेपित करते हुए, वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है । न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, विभाजन का तरीका तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार किया गया था । विभाजन का तरीका, हि. प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 130(2) के अधीन अपील होने योग्य है । इस धारा के निबंधनों में, विभाजन के तरीके के विरुद्ध अपील 30 दिनों की अवधि के भीतर प्रस्तुत की जा सकती है । याची संख्या 1 को विभाजन कार्यवाहियों में समन तामील किया गया था, तथापि, उसने उपस्थित नहीं होने का चुनाव किया था । उसने विभाजन के तरीके के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की । इस प्रकार, विभाजन का तरीका याची संख्या 1 के विरुद्ध अंतिम हो गया था । कलक्टर के समक्ष उसकी अपील विभाजन तरीके के विरुद्ध नहीं थी अपितु, तारीख 4 मार्च, 2009 के आदेश के विरुद्ध थी जिसके द्वारा विभाजन का लिखत स्टाम्प कागजों पर तैयार करने का आदेश दिया गया था । तारीख 4 मार्च, 2009 का आदेश मात्र एक औपचारिक आदेश था किन्तु अब याची संख्या 1 द्वारा उद्भूत सभी शिकायतें विभाजन के तरीके के विरुद्ध हैं । यह विवादित नहीं है कि याची संख्या 1 को तारीख 30 नवम्बर, 2007 के आदेश को जानकारी थी जिसके द्वारा विभाजन का तरीका तैयार किया गया था । जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है कि याची संख्या 1 ने तामीली होने के बावजूद विभाजन कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया था । विभाजन का तरीका तैयार होने के पश्चात्, वह तारीख 30 जनवरी, 2009 ए. सी. प्रथम श्रेणी के समक्ष उपस्थित हुई, जब उसका कथन अभिलिखित हुआ था । इसलिए, याची संख्या 1 को तारीख 30 नवम्बर, 2007 के विभाजन तरीके के विरुद्ध उसकी शिकायतों के संबंध में नहीं सुना जा सकता है । उसके द्वारा उद्भूत 'फर्द कब्जा मौका' को तैयार करने का प्रश्न भी व्यर्थ हो गया है, क्योंकि 'फर्द कब्जा मौका'

को विभाजन का तरीका तैयार होने के समय पर तैयार किया जाता है । यह दलील की हक का प्रश्न अन्तर्वलित है, कायम नहीं रखा जा सकता है । याची संख्या 2 और 3, स्वीकृततः तारीख 30 नवम्बर, 2007 को अवयस्क थे जब विभाजन का तरीका तैयार हुआ था । यह विवादित नहीं है कि उन्हें उनकी नैसर्गिक संरक्षक और माता तथा याची संख्या 1 के माध्यम से विभाजन कार्यवाहियों में उपस्थित होने के लिए तामीली की गई थी । जैसा कि पूर्ववर्ती उल्लिखित है, याची संख्या 1 ने विभाजन कार्यवाहियों में अनुपस्थित रहने का चुनाव किया था और कार्यवाहियां एकपक्षीय की गई थीं । याची संख्या 2 और 3 के विरुद्ध भी एकपक्षीय कार्यवाहियां की गई थीं । उनके लिए कोई न्यायालय संरक्षक नियुक्त नहीं हुआ था । याची संख्या 2 और 3 ने तारीख 14 सितम्बर, 2009 को वयस्कता की आयु प्राप्त की थी । यदि वे विभाजन के तरीके से व्यथित थे तो उन्हें विधि के अनुसरण में अर्थात् वयस्कता की आयु प्राप्त करने के पश्चात् तीन वर्षों की अवधि के भीतर उसे आक्षेपित करना अपेक्षित था । याची संख्या 2 और 3 ने अपनी माता के साथ तारीख 14 सितम्बर, 2009 को पुनरीक्षण याचिका संस्थित की थी । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे विभाजन कार्यवाहियों के साथ-साथ तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार विभाजन के तरीके से अवगत थे । उनके द्वारा विभाजन के तरीके को आक्षेपित नहीं किया गया था । वस्तुतः, इसे आज की तारीख तक आक्षेपित नहीं किया गया है । वर्तमान याचिका में भी तारीख 30 नवम्बर, 2007 के विभाजन के तरीके को अभिखंडित करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट प्रार्थना नहीं की गई है । जब याचियों ने भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 के उपबंधों के अनुसरण में, तारीख 30 नवम्बर, 2007 के विभाजन के तरीके को चुनौती नहीं दी है तो उन्हें इस शिकायत पर नहीं सुना जा सकता है कि विभाजन के तरीके में कोई त्रुटि है । वर्तमान मामले में, यद्यपि, यह पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है कि याची संख्या 2 और 3 ने वयस्कता की आयु प्राप्त होने के पश्चात् भी तारीख 30 नवम्बर, 2007 को एकपक्षीय कार्यवाहियों में तैयार विभाजन के तरीके को कोई चुनौती नहीं दी है,

तथापि, अन्यथा भी, इससे इन याचियों को क्या प्रतिकूलता कारित हुई है, दर्शित नहीं किया गया है । याची संख्या 1 अर्थात् याची संख्या 2 और 3, जो तारीख 30 नवम्बर, 2007 को अवयस्क थे, की माता और नैसर्गिक संरक्षक ने विभाजन कार्यवाहियों में सम्मिलित नहीं होने का चुनाव किया था । विभाजन का तरीका, तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार हुआ था । याची संख्या 1 ने कानूनी परिसीमा अवधि के भीतर इसे आक्षेपित नहीं किया । आदेश अंतिम हो गया था । तारीख 16 मार्च, 2009 को याची संख्या 1 ने एक अपील फाइल की जो विभाजन के तरीके के विरुद्ध नहीं थी अपितु तत्पश्चात् पारित औपचारिक आदेश के विरुद्ध थी । याचियों में से किसी ने भी विभाजन का तरीका आक्षेपित नहीं किया जो विनिर्दिष्टतः अधिनियम के अधीन अपील योग्य था । याची संख्या 2 और 3 ने तारीख 14 सितम्बर, 2009 को प्रभागीय आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण याचिका में अपनी माता के साथ सम्मिलित हुए किन्तु विभाजन के तरीकों को चुनौती नहीं दी । याची संख्या 1 भी तारीख 30 जनवरी, 2009 को ए. सी. प्रथम श्रेणी के समक्ष उपस्थित हुई थी और विभाजन के तरीके के अनुसरण में विभाजन स्थल पर विभाजन कराने के संबंध में अपना कथन अभिलिखित किया था । उसने यह कथन किया था कि उसे कुछ खसरा संख्याओं के आबंटन के बारे में आक्षेप था और विभाजन में प्रत्यर्थी संख्या 6 को कतिपय खसरा संख्याओं के आबंटन के संबंध में भी आक्षेप था किन्तु अतिशेष विभाजन में उसे कोई आक्षेप नहीं था । इन आक्षेपों का विभाजन के तरीके के प्रकाश में कोई अभिप्राय नहीं था । याची संख्या 2 और 3 के हिस्से, याची संख्या 1 के साथ संयुक्त रखे गए थे । इसलिए, वित्त आयुक्त का यह मत न्यायोचित था कि याची संख्या 2 और 3 के विरुद्ध कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई थी न ही उनके अधिकार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विभाजन के तरीके द्वारा किसी प्रकार से प्रभावित थे । सभी तीनों राजस्व प्राधिकारियों द्वारा यह तथ्यात्मक निष्कर्ष निकाला गया है कि विभाजन, विभाजन के तरीके के अनुसरण में किया गया है । अभिलेखों के अनुसार, विभाजन कार्यवाहियां काफी लम्बे समय

पूर्व पूरी हो गई हैं । तारीख 20 अगस्त, 2009 को संयुक्त भूमि के हिस्से धारकों को विभाजन के तरीके के अनुसार तैयार विभाजन लिखत के अनुसरण में कब्जा प्रदान किया गया था । [पैरा 4(i), 4(ii) और 4(iii)]

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	2021 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 2492 : **के. पी. नटराजन और एक अन्य** बनाम **मुतलम्मल और अन्य ;**	3
[2018]	(2018) 2 एस. सी. सी. 504 : **नगैय्या और एक अन्य** बनाम **चाउदम्मा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधियों और एक अन्य ;**	3, 4(ii)
[1968]	ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 954 : **राम चन्द्र आर्या** बनाम **मान सिंह और एक अन्य ।**	3

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2021 की सिविल रिट याचिका सं. 4373.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से — श्री प्रवीण चौहान, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 से 5 की ओर से — सर्वश्री अश्वनी शर्मा, अपर महाधिवक्ता के साथ विक्रांत चंदेल, उप-महाधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 6 की ओर से — सर्वश्री बी. एस. चौहान, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ मुनिश दत्वालिया, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति ज्योत्सना रेवाल दुआ – तारीख 4 मार्च, 2009 को सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, चम्बा (संक्षेप में जिसे ए. सी. प्रथम श्रेणी

कहा गया है) ने स्टाम्प कागजों पर विभाजन दस्तावेज तैयार करने के लिए आदेश दिया था । इस आदेश को कलक्टर, चम्बा, जिन्होंने तारीख 24 अगस्त, 2009 के आदेश द्वारा अपील खारिज कर दी थी, के समक्ष याची संख्या 1 द्वारा चुनौती दी गई थी । कलक्टर द्वारा पारित आदेश को सभी तीनों याचियों द्वारा पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से प्रभागीय आयुक्त, कांगड़ा प्रभाग के समक्ष चुनौती दी गई थी । यह पुनरीक्षण याचिका भी तारीख 2 जुलाई, 2011 को खारिज कर दी गई थी । इसके पश्चात् याचियों ने वित्त आयुक्त (अपील), हिमाचल प्रदेश के समक्ष द्वितीय पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की । यह पुनरीक्षण याचिका भी तारीख 30 जनवरी, 2014 को खारिज कर दी गई । इससे व्यथित होकर, याचियों ने राजस्व प्राधिकारियों द्वारा पारित सभी आदेशों को आक्षेपित करते हुए, वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है ।

2. **तथ्य**

2(i). प्रत्यर्थी संख्या 6 ने ए. सी. प्रथम श्रेणी, चम्बा के समक्ष हि. प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 123 के अधीन मोहल ओहाली, तहसील और जिला चम्बा में स्थित खाता/खतौनी संख्या 19/25-27, कीटा 16, माप 17-18 बीघा में समाविष्ट संयुक्त भूमि के विभाजन के लिए एक आवेदन किया था । याची संख्या 2 और 3, याची संख्या 1 के बच्चे हैं और उस समय अवयस्क थे । उन्होंने अपनी नैसर्गिक संरक्षक और माता अर्थात् याची संख्या 1 के माध्यम से विभाजन कार्यवाहियों में वादित थे ।

2(ii). याची संख्या 1 को ए. सी. प्रथम श्रेणी के समक्ष तारीख 25 जून, 2007 को विभाजन कार्यवाहियों में उपस्थित होने के लिए तामील किया गया था । वह उपस्थित नहीं हुई, इसलिए, एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । तारीख 14 अगस्त, 2007 को याची संख्या 2 और 3 को उनकी माता और नैसर्गिक संरक्षक याची संख्या 1 के माध्यम से समन भेजे गए थे । याची संख्या 1 को भी तारीख 18 अक्तूबर, 2007 को उपस्थित होने के लिए समन भेजे गए थे । याची संख्या 1 जिसके विरुद्ध तारीख 25 जून, 2007 को एकपक्षीय कार्यवाही पहले ही की जा चुकी थी, तारीख 18 अक्तूबर, 2007 को न्यायालय में उपस्थित नहीं

हुई । याची संख्या 2 और 3 के विरुद्ध भी एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । विभाजन का तरीका तारीख 30 नवम्बर, 2007 को ए. सी. प्रथम श्रेणी द्वारा तैयार किया गया था । अभिलेख, विभाजन के तरीके के अनुसार विभाजन करने के लिए, विभाजन स्थल पर फील्ड कानूनगो के पास भेजे गए थे । विभाजन का लिखत तारीख 22 जनवरी, 2009 को तैयार किया गया था । विभाजन की मंजूरी तारीख 31 जनवरी, 2009 को ए. सी. प्रथम श्रेणी द्वारा दी गई थी । तारीख 4 मार्च, 2009 को ए. सी. प्रथम श्रेणी द्वारा स्टाम्प कागजातों पर विभाजन लिखत तैयार करने के लिए आदेश पारित किया गया था ।

2(iii). तारीख 16 मार्च, 2009 को याची संख्या 1 ने कलक्टर के समक्ष तारीख 4 मार्च, 2009 के आदेश के विरुद्ध एक अपील फाइल की । यह अपील इस आधार पर संस्थित की गई थी कि तारीख 4 मार्च, 2009 का आदेश याची संख्या 1 की अनुपस्थिति में पारित की गई थी । मामले में हक का प्रश्न अन्तर्वलित था, अतएव, ए. सी. प्रथम श्रेणी, चम्बा उक्त आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं थे । विभाजन का तरीका विधि और लागू निर्देशों के अनुसरण में तैयार नहीं किया गया था । याची संख्या 1 को विभाजन में बंजर और अकृषीय योग्य भूमि आबंटित की गई थी । विद्वान् कलक्टर ने यह अभिनिर्धारित किया कि याची संख्या 1 को विभाजन कार्यवाहियों में समुचित अवसर दिया गया था किन्तु वह तामीली के पश्चात् भी ए. सी. प्रथम श्रेणी के समक्ष उपस्थित नहीं हुई थी । उसकी हक का प्रश्न अन्तर्वलित होने की दलील भी उसके पक्ष में कलक्टर ने नहीं पाई, जिन्होंने भी यह मत व्यक्त किया कि ए. सी. प्रथम श्रेणी ने हिस्से धारकों के बीच उनके हिस्से के अनुसार विभाजन के तरीके के अनुसरण में भूमि का विभाजन किया था ।

2(iv). याची संख्या 1 ने अपने दो बच्चों के साथ कलक्टर द्वारा पारित तारीख 24 अगस्त, 2009 के आदेश को प्रभागीय आयुक्त के समक्ष आक्षेपित किया । प्रभागीय आयुक्त ने यह अभिनिर्धारित किया कि याचियों को अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर

दिया गया था और तारीख 2 जुलाई, 2011 को पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी थी ।

2(v). याचियों द्वारा वित्त आयुक्त के समक्ष भी पुनरीक्षण याचिका को ले जायी गई थी । इस याचिका में, याचियों ने यह दलील दी थी कि विभाजन का तरीका तैयार करने के पूर्व, ए. सी. प्रथम श्रेणी ने 'फर्द कब्जा मौका' तैयार नहीं किया था । विभाजन का तरीका याची संख्या 2 और 3 के विरुद्ध की गई एकपक्षीय कार्यवाहियों में तैयार किया गया था जो उस समय अवयस्क थे । वित्त आयुक्त ने तारीख 30 जनवरी, 2014 पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि 'फर्द कब्जा मौका' तैयार करने का विवाद्यक याचियों द्वारा सुसंगत समय पर उद्भूत नहीं किया गया था और विभाजन कार्यवाहियां पूरी होने के पश्चात् इस विवाद्यक को उद्भूत नहीं किया जा सकता है । वित्त आयुक्त ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि याची संख्या 1, याची संख्या 2 और 3 जो तारीख 30 नवम्बर, 2007 को अवयस्क थे, की माता और नैसर्गिक संरक्षक होने के नाते विभाजन कार्यवाहियों से सम्यक् रूप से जुड़ी हुई थी । उसने कई तामीली होने के बावजूद कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया । अवयस्कों के हिस्से उनकी माता के साथ संयुक्त रखे गए थे, इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के प्रति कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई थी । उनके अधिकार किसी तरीके से प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं हुए थे ।

राजस्व प्राधिकारियों द्वारा पारित उपर्युक्त आदेशों से व्यथित होकर, याचियों ने 2014 की सीडब्ल्यूपी संख्या 1771 संस्थित की । तारीख 27 जुलाई, 2021 के निर्णय द्वारा विभाजन में तकनीकी कमियां होने के अभिवाक् पर, याचियों को नए सिरे से याचिका फाइल करने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका वापस लेने की अनुज्ञा दी गई थी ।

उपर्युक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में, याचियों ने निम्नलिखित सारवान् अनुतोषों के साथ वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है :–

> "(i) कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पुनरीक्षण याचिका संख्या 184/2011 में पारित तारीख 30 जनवरी, 2014 का आदेश, जो

उपाबंध पी-5 में अन्तर्विष्ट है, जिसके द्वारा विद्वान् सहायक कलक्टर, प्रथम श्रेणी, चम्बा द्वारा वाद संख्या 18/टीएचई/सीबीए/2007, तारीख 4 मार्च, 2009 में पारित आदेश जो उपाबंध पी-2 में अन्तर्विष्ट है, विद्वान् उप-प्रभागीय चम्बा द्वारा वाद संख्या 6/2VIII/09, तारीख 24 अगस्त, 2009 में पारित आदेश, जो उपाबंध पी-3 में अन्तर्विष्ट है, विद्वान् प्रभागीय आयुक्त, कांगड़ा खंड, धर्मशाला द्वारा पुनरीक्षण संख्या 392/09 में पारित आदेश, जो उपाबंध पी-4 में अन्तर्विष्ट है, जो प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पुष्टि और कायम रखे गए थे, को न्याय हित में अभिखंडित और अपास्त किया जाए ।

(ii) कि प्रत्यर्थी संख्या 5 को यह निर्देश दिया जाए कि वह याची संख्या 2 और 3 को स्वयं को प्रस्तुत करते हुए, पर्याप्त अवसर देने के पश्चात् वाद संख्या 18/टीएचई/सीबीए/2007 में विभाजन कार्यवाहियों को नए सिरे से आरम्भ करें ।"

3. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि विभाजन का तरीका ए. सी. प्रथम श्रेणी द्वारा तारीख 30 नवम्बर, 2007 को याची संख्या 2 और 3 की अनुपस्थिति में तैयार किया गया था, जो उस समय अवस्यक थे । उन्होंने **राम चन्द्र आर्या** बनाम **मान सिंह और एक अन्य**[1] और **के. पी. नटराजन और एक अन्य** बनाम **मुतलम्मल और अन्य**[2] वाले मामलों में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए तारीख 16 जुलाई, 2021 के निर्णयों का अवलंब लेते हुए, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विभाजन का तरीका जो अवस्यकों के विरुद्ध तैयार किया गया है, विधि की दृष्टि में अकृत है । यह कि 'फर्द कब्जा मौका', विभाजन का तरीका तैयार करने के पूर्व तैयार नहीं किया गया था । इसलिए, विभाजन का तरीका अपास्त किया जाना अपेक्षित है । यह भी तर्क दिया गया कि याचियों द्वारा उद्भूत विवाद्यक हक को

---

[1] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 954.

[2] 2021 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 2492.

ध्यान में रखते हुए, ए. सी. प्रथम श्रेणी विभाजन कार्यवाहियों को अंतिम रूप देने में सक्षम नहीं थे ।

याचिका का विरोध करते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 6 के विद्‌वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि याचियों ने अपनी अवयस्कता का विवाद्‌यक उद्भूत नहीं किया था और इससे कलक्टर के समक्ष विभाजन कार्यवाहियों पर प्रभाव पड़ता है । याची संख्या 2 और 3 ने तारीख 14 सितम्बर, 2009 को वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी । पुनरीक्षण याचिका में कलक्टर द्‌वारा पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया था जो सभी याचियों द्‌वारा संयुक्त रूप से तारीख 14 सितम्बर, 2009 को प्रभागीय आयुक्त के समक्ष संस्थित की गई थी । यद्‌यपि, तारीख 14 सितम्बर, 2009 को याची संख्या 2 और 3 वयस्क हो गए थे, तथापि. उन्होंने अपनी माता याची संख्या 1 के माध्यम से अवयस्कों के रूप में पुनरीक्षण याचिका फाइल की थी । यहां तक कि प्रभागीय आयुक्त के समक्ष भी याचियों ने विभाजन का तरीका तैयार करने की तारीख पर वयस्क होने पर भी याची संख्या 2 और 3 के विवाद्‌यक को उद्भूत नहीं किया था । वर्तमान रिट याचिका में याचियों द्‌वारा उद्भूत होने वाले विवाद्‌यक को उनके द्‌वारा प्रथम बार वित्त आयुक्त के समक्ष उद्भूत किया गया था । विद्‌वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह निवेदन किया कि यद्‌यपि, याची संख्या 2 और 3 विभाजन का तरीका तैयार होने की तारीख पर वयस्क थे, तथापि, उनके विरुद्ध कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई, या तो तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार विभाजन के तरीके द्‌वारा या पश्चात्‌वर्ती आदेशों द्‌वारा, जिसके द्‌वारा विभाजन, विभाजन के तरीके के अनुसार किया गया था । याची संख्या 2 और 3 के हिस्से उनकी माता और नैसर्गिक संरक्षक अर्थात् याची संख्या 1 के साथ संयुक्त रखे गए थे । विद्‌वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि याची संख्या 2 और 3 ने तारीख 14 सितम्बर, 2009 को वयस्कता की आयु प्राप्त होने के पश्चात् भी तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार विभाजन के तरीके को आक्षेपित नहीं किया था । विद्‌वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अपने निवेदनों के समर्थन में, **नगैय्या और एक अन्य** बनाम

चाउदम्मा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधियों और एक अन्य[1] वाले मामले का अवलंब लिया ।

विद्वान् उप-महाधिवक्ता के अनुसार, आक्षेपित आदेश विधि के अनुसरण में पारित किए गए हैं और इनमें कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

4. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया । मेरे सुविचारित मत में, यह याचिका निम्नलिखित कारणों से खारिज किए जाने योग्य है –

4(i). **याची संख्या 1 द्वारा विभाजन के तरीके को चुनौती**

वर्तमान मामले में, विभाजन का तरीका तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार किया गया था । विभाजन का तरीका, हि. प्र. भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 की धारा 130(2) के अधीन अपील होने योग्य है । इस धारा के निबंधनों में, विभाजन के तरीके के विरुद्ध अपील 30 दिनों की अवधि के भीतर प्रस्तुत की जा सकती है । याची संख्या 1 को विभाजन कार्यवाहियों में समन तामील किया गया था, तथापि, उसने उपस्थित नहीं होने का चुनाव किया था । उसने विभाजन के तरीके के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की । इस प्रकार, विभाजन का तरीका याची संख्या 1 के विरुद्ध अंतिम हो गया था । कलक्टर के समक्ष उसकी अपील विभाजन तरीके के विरुद्ध नहीं थी अपितु, तारीख 4 मार्च, 2009 के आदेश के विरुद्ध थी जिसके द्वारा विभाजन का लिखत स्टाम्प कागजों पर तैयार करने का आदेश दिया गया था । तारीख 4 मार्च, 2009 का आदेश मात्र एक औपचारिक आदेश था किन्तु अब याची संख्या 1 द्वारा उद्भूत सभी शिकायतें विभाजन के तरीके के विरुद्ध हैं । यह विवादित नहीं है कि याची संख्या 1 को तारीख 30 नवम्बर, 2007 के आदेश को जानकारी थी जिसके द्वारा विभाजन का तरीका तैयार किया गया था । जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है कि

---

[1] (2018) 2 एस. सी. सी. 504.

याची संख्या 1 ने तामीली होने के बावजूद विभाजन कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया था । विभाजन का तरीका तैयार होने के पश्चात्, वह तारीख 30 जनवरी, 2009 ए. सी. प्रथम श्रेणी के समक्ष उपस्थित हुई, जब उसका कथन अभिलिखित हुआ था । इसलिए, याची संख्या 1 को तारीख 30 नवम्बर, 2007 के विभाजन तरीके के विरुद्ध उसकी शिकायतों के संबंध में नहीं सुना जा सकता है । उसके द्वारा उद्धृत 'फर्द कब्जा मौका' को तैयार करने का प्रश्न भी व्यर्थ हो गया है, क्योंकि 'फर्द कब्जा मौका' को विभाजन का तरीका तैयार होने के समय पर तैयार किया जाता है । यह दलील की हक का प्रश्न अन्तर्वलित है, कायम नहीं रखा जा सकता है ।

4(ii). **याची संख्या 2 और 3 द्वारा विभाजन के तरीके को चुनौती**

याची संख्या 2 और 3, स्वीकृततः तारीख 30 नवम्बर, 2007 को अवयस्क थे जब विभाजन का तरीका तैयार हुआ था । यह विवादित नहीं है कि उन्हें उनकी नैसर्गिक संरक्षक और माता तथा याची संख्या 1 के माध्यम से विभाजन कार्यवाहियों में उपस्थित होने के लिए तामीली की गई थी । जैसा कि पूर्ववर्ती उल्लिखित है, याची संख्या 1 ने विभाजन कार्यवाहियों में अनुपस्थित रहने का चुनाव किया था और कार्यवाहियां एकपक्षीय की गई थीं । याची संख्या 2 और 3 के विरुद्ध भी एकपक्षीय कार्यवाहियां की गई थीं । उनके लिए कोई न्यायालय संरक्षक नियुक्त नहीं हुआ था । याची संख्या 2 और 3 ने तारीख 14 सितम्बर, 2009 को वयस्कता की आयु प्राप्त की थी । यदि वे विभाजन के तरीके से व्यथित थे तो उन्हें विधि के अनुसरण में अर्थात् वयस्कता की आयु प्राप्त करने के पश्चात् तीन वर्षों की अवधि के भीतर उसे आक्षेपित करना अपेक्षित था । याची संख्या 2 और 3 ने अपनी माता (याची संख्या 1) के साथ तारीख 14 सितम्बर, 2009 को पुनरीक्षण याचिका संस्थित की थी । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे विभाजन कार्यवाहियों के साथ-साथ तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार विभाजन के तरीके से अवगत थे । उनके द्वारा विभाजन के तरीके को आक्षेपित नहीं किया गया था । वस्तुतः, इसे आज की तारीख तक आक्षेपित नहीं

किया गया है । वर्तमान याचिका में भी तारीख 30 नबम्बर, 2007 के विभाजन के तरीके को अभिखंडित करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट प्रार्थना नहीं की गई है । जब याचियों ने भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 के उपबंधों के अनुसरण में, तारीख 30 नवम्बर, 2007 के विभाजन के तरीके को चुनौती नहीं दी है तो उन्हें इस शिकायत पर नहीं सुना जा सकता है कि विभाजन के तरीके में कोई त्रुटि है ।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नगैय्या और एक अन्य** बनाम **चाउदम्मा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधियों और एक अन्य**[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि अवयस्क प्रतिवादियों के संबंध में, डिक्री अपास्त नहीं की जा सकती है, यद्यपि जब वादार्थ संरक्षक की नियुक्ति के लिए औपचारिकताएं उन्हें प्रस्तुत नहीं की गई थी । अवयस्क प्रतिवादियों के मामले में जहां संहिता के आदेश 32 के नियम 3 के अधीन संबंधित न्यायालय से अनुज्ञा नहीं ली गई है, किन्तु डिक्री पारित कर दी गई है तो अवयस्क प्रतिवादी की प्रतिकूलता के अभाव में, ऐसी डिक्री को अपास्त नहीं किया जा सकता है । मुख्य परीक्षण यह है कि डिक्री अपास्त करने के लिए अवयस्क प्रतिवादी के प्रति प्रतिकूलता होनी चाहिए । निर्णय का सुसंगत पैरा निम्नलिखित है :–

> "14. न केवल, न्यायालय द्वारा न्यायमित्र की नियुक्ति के लिए कोई उपबंध है अपितु न्यायालय की अनुज्ञा भी आवश्यक नहीं है । तथापि, अवस्यक प्रतिवादियों के संबंध में भी विभिन्न उच्च न्यायालयों ने निरन्तर यह मत अपनाया है कि वहां भी डिक्री अपास्त नहीं की जा सकती है जहां तदर्थ संरक्षक की नियुक्ति के लिए कतिपय औपचारिकताएं प्रतिवादी द्वारा पूरी नहीं की गई हैं । उच्च न्यायालयों ने अवयस्क प्रतिवादियों के मामले में यह मत व्यक्त किया है कि जहां संहिता के आदेश 32 के नियम 3 के अधीन संबंधित न्यायालय की अनुज्ञा नहीं ली गई है किन्तु अवयस्क प्रतिवादी की प्रति प्रतिकूलता के अभाव में डिक्री पारित

---

[1] (2018) 2 एस. सी. सी. 504.

कर दी गई है वहां ऐसी डिक्री अपास्त नहीं की जा सकती है । मुख्य परीक्षण यह है कि डिक्री अपास्त करने के लिए अवस्यक प्रतिवादी के प्रति प्रतिकूलता कारित होनी चाहिए । वर्तमान मामले में, अवयस्क की ओर से वाद फाइल किया गया था और इसलिए, न्यायमित्र अवस्यक का प्रतिनिधित्व करने के लिए सक्षम था । स्वीकृततः वादी संख्या 2 के प्रति भी कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई थी ।

18. संहिता का आदेश 32 का नियम 12, 13 और 14 अवस्यक वादी को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह वयस्कता प्राप्त होने के पश्चात् या तो वाद की कार्यवाही जारी रखने या वाद का परित्याग करने का विनिश्चय ले सकता है । इस प्रकार, वयस्कता प्राप्त होने के पश्चात् यदि वादी वाद जारी रखने का विनिश्चय लेता है तो वह ऐसा आवेदन देकर कर सकता है । इसके उपरान्त, अवस्यक द्वारा वयस्कता प्राप्त होने की तारीख से अवस्यक वादी का न्याय मित्र द्वारा प्रतिनिधित्व समाप्त हो जाता है । संहिता का आदेश 32 का नियम 12, अवस्यक वादी से यह अपेक्षा करता है कि वह या तो वाद में कार्यवाही करने का या परित्यक्त करने का विकल्प चुने और कहीं भी यह उपबंध नहीं है कि यदि अवयस्क वादी द्वारा वयस्कता प्राप्त होने के पश्चात् ऐसा चुनाव नहीं करता है तो वाद उस आधार पर खारिज हो जाएगा । यदि न्यायालय को वाद लम्बित रहने के दौरान यह पता चलता है कि अवयस्क वादी ने वयस्कता प्राप्त कर ली है तो न्यायालय द्वारा ऐसे वादी को यह चुनाव करने के लिए न्यायालय में बुलाने की आवश्यकता होती है कि क्या वह वाद में कार्यवाही जारी रखने का आशय रखता है या नहीं । दूसरे शब्दों में, अवयस्क, जिसने मामला लम्बित रहने के दौरान वयस्कता प्राप्त कर ली है, को वाद लम्बित रहने की सूचना होनी चाहिए और ऐसी सूचना के अभाव में, अवयस्क को वाद लम्बित रहने की जानकारी होने के लिए अभ्यारोपित नहीं किया जा सकता है । इसलिए, उस अवयस्क के

विरुद्ध जिसने अवयस्कता प्राप्त कर ली है, कोई प्रतिकूल आदेश पारित करने के पूर्व, न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति को नोटिस दिया जाना चाहिए । निसंस्देह, वर्तमान मामले में, तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन ऐसा अवसर उद्भूत नहीं हुआ है, क्योंकि वादी संख्या 2 वयस्कता प्राप्त होने के पश्चात् भी वाद की कार्यवाहियों में निरन्तर बना रहा जिसका अभिप्रायः यह है कि उसने वाद की कार्यवाहियों को जारी रखने का चुनाव किया है ।"

याचियों द्वारा अवलम्बित निर्णय, वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है । वर्तमान मामले में, यद्यपि, यह पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है कि याची संख्या 2 और 3 ने वयस्कता की आयु प्राप्त होने के पश्चात् भी तारीख 30 नवम्बर, 2007 को एकपक्षीय कार्यवाहियों में तैयार विभाजन के तरीके को कोई चुनौती नहीं दी है, तथापि, अन्यथा भी, इससे इन याचियों को क्या प्रतिकूलता कारित हुई है, दर्शित नहीं किया गया है । याची संख्या 1 अर्थात् याची संख्या 2 और 3, जो तारीख 30 नवम्बर, 2007 को अवयस्क थे, की माता और नैसर्गिक संरक्षक ने विभाजन कार्यवाहियों में सम्मिलित नहीं होने का चुनाव किया था । विभाजन का तरीका, तारीख 30 नवम्बर, 2007 को तैयार हुआ था । याची संख्या 1 ने कानूनी परिसीमा अवधि के भीतर इसे आक्षेपित नहीं किया । आदेश अंतिम हो गया था । तारीख 16 मार्च, 2009 को याची संख्या 1 ने एक अपील फाइल की जो विभाजन के तरीके के विरुद्ध नहीं थी अपितु तत्पश्चात् पारित औपचारिक आदेश के विरुद्ध थी । याचियों में से किसी ने भी विभाजन का तरीका आक्षेपित नहीं किया जो विनिर्दिष्टतः अधिनियम के अधीन अपील योग्य था । याची संख्या 2 और 3 ने तारीख 14 सितम्बर, 2009 को (जब वे वयस्क हो गए) प्रभागीय आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण याचिका में अपनी माता के साथ सम्मिलित हुए किन्तु विभाजन के तरीकों को चुनौती नहीं दी । याची संख्या 1 भी तारीख 30 जनवरी, 2009 को ए. सी. प्रथम श्रेणी के समक्ष उपस्थित हुई थी और विभाजन के तरीके के अनुसरण में विभाजन स्थल पर विभाजन कराने के संबंध में अपना कथन

अभिलिखित किया था । उसने यह कथन किया था कि उसे कुछ खसरा संख्याओं के आबंटन के बारे में आक्षेप था और विभाजन में प्रत्यर्थी संख्या 6 को कतिपय खसरा संख्याओं के आबंटन के संबंध में भी आक्षेप था किन्तु अतिशेष विभाजन में उसे कोई आक्षेप नहीं था । इन आक्षेपों का विभाजन के तरीके के प्रकाश में कोई अभिप्राय नहीं था । याची संख्या 2 और 3 के हिस्से, याची संख्या 1 के साथ संयुक्त रखे गए थे । इसलिए, वित्त आयुक्त का यह मत न्यायोचित था कि याची संख्या 2 और 3 के विरुद्ध कोई प्रतिकूलता कारित नहीं हुई थी न ही उनके अधिकार मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विभाजन के तरीके द्वारा किसी प्रकार से प्रभावित थे । सभी तीनों राजस्व प्राधिकारियों द्वारा यह तथ्यात्मक निष्कर्ष निकाला गया है कि विभाजन, विभाजन के तरीके के अनुसरण में किया गया है ।

4(iii). अभिलेखों के अनुसार, विभाजन कार्यवाहियां काफी लम्बे समय पूर्व पूरी हो गई हैं । तारीख 20 अगस्त, 2009 को संयुक्त भूमि के हिस्से धारकों को विभाजन के तरीके के अनुसार तैयार विभाजन लिखत के अनुसरण में कब्जा प्रदान किया गया था ।

पूर्वोक्त सभी कारणों से, मैं वर्तमान याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूं और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है, इसलिए, अन्य कई लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, को भी खारिज किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

क.

<u>संसद् के अधिनियम</u>

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

(1989 का अधिनियम संख्यांक 33)

[11 सितंबर, 1989]

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों पर अत्याचार का अपराध करने का निवारण करने के लिए, ऐसे अपराधों के निवारण के लिए विशेष न्यायालयों का तथा ऐसे अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों को राहत देने का और उनके पुनर्वास का तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के चालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अत्याचार" से धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराध अभिप्रेत है ;

(ख) "संहिता" से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) अभिप्रेत है ;

(ग) "अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों" के वही अर्थ हैं जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (24) और खंड (25) में हैं ;

(घ) "विशेष न्यायालय" से धारा 14 में विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कोई सेशन न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ङ) "विशेष लोक अभियोजक" से विशेष लोक अभियोजक के रूप में विनिर्दिष्ट लोक अभियोजक या धारा 15 में निर्दिष्ट अधिवक्ता अभिप्रेत है ;

(च) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और संहिता या भारतीय दंड संहिता में परिभाषित हैं, वही अर्थ हैं जो, यथास्थिति, संहिता में या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में है ।

(2) इस अधिनियम में किसी अधिनियमिति या उसके किसी उपबंध के प्रति किसी निर्देश का अर्थ किसी ऐसे क्षेत्र के संबंध में जिसमें ऐसी अधिनियमिति या ऐसा उपबंध प्रवृत्त नहीं है, यह लगाया जाएगा कि वह उस क्षेत्र में प्रवृत्त तत्स्थानी विधि, यदि कोई हो, के प्रतिनिर्देश है ।

अध्याय 2

अत्याचार के अपराध

3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड – (1) कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, –

(i) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अखाद्य या घृणाजनक पदार्थ पीने या खाने के लिए मजबूर करेगा ;

(ii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के परिसर या पड़ोस में मल-मूत्र, कूड़ा, पशु-शव या कोई अन्य

घृणाजनक पदार्थ इकट्ठा करके उसे क्षति पहुंचाने, अपमानित करने या क्षुब्ध करने के आशय से कार्य करेगा ;

(iii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के शरीर से बलपूर्वक कपड़े उतारेगा या उसे नंगा या उसके चेहरे या शरीर को पोतकर घुमाएगा या इसी प्रकार का कोई अन्य ऐसा कार्य करेगा जो मानव के सम्मान के विरुद्ध है ;

(iv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के स्वामित्वाधीन या उसे आबंटित या किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे आबंटित किए जाने के लिए अधिसूचित किसी भूमि को सदोष अधिभोग में लेगा या उस पर खेती करेगा या उसे आबंटित भूमि को अंतरित करा लेगा ;

(v) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को उसकी भूमि या परिसर से सदोष बेकब्जा करेगा या किसी भूमि, परिसर या जल पर उसके अधिकारों के उपभोग में हस्तक्षेप करेगा ;

(vi) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को 'बेगार' करने के लिए या सरकार द्वारा लोक प्रयोजनों के लिए अधिरोपित किसी अनिवार्य सेवा से भिन्न अन्य समरूप प्रकार के बलात्श्रम या बंधुआ मजदूरी के लिए विवश करेगा या फुसलाएगा ;

(vii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को मतदान न करने के लिए या किसी विशिष्ट अभ्यर्थी के लिए मतदान करने के लिए या विधि द्वारा उपबंधित से भिन्न रीति से मतदान करने के लिए मजबूर या अभित्रस्त करेगा ;

(viii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के विरुद्ध मिथ्या, द्वेषपूर्ण या तंग करने वाला वाद या दांडिक या अन्य विधिक कार्यवाही संस्थित करेगा ;

(ix) किसी लोक सेवक को कोई मिथ्या या तुच्छ जानकारी देगा और उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के

किसी सदस्य को क्षति पहुंचाने या क्षुब्ध करने के लिए ऐसे लोकसेवक से उसकी विधिपूर्ण शक्ति का प्रयोग कराएगा ;

(x) जनता को दृष्टिगोचर किसी स्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अपमान करने के आशय से साशय उसको अपमानित या अभित्रस्त करेगा ;

(xi) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसकी लज्जा भंग करने के आशय से हमला या बल प्रयोग करेगा ;

(xii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में होने पर उस स्थिति का प्रयोग उसका लैंगिक शोषण करने के लिए, जिसके लिए वह अन्यथा सहमत नहीं होती, करेगा ;

(xiii) किसी स्रोत, जलाशय या किसी अन्य उद्गम के जल को जो आमतौर पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्यों द्वारा उपयोग में लाया जाता है, दूषित या गंदा करेगा जिससे कि वह उस प्रयोजन के लिए कम उपयुक्त हो जाए जिसके लिए उसका आमतौर पर प्रयोग किया जाता है ;

(xiv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को सार्वजनिक अभिगम के स्थान के मार्ग के किसी रूढ़िजन्य अधिकार से वंचित करेगा या ऐसे सदस्य को बाधा पहुंचाएगा जिससे कि वह ऐसे सार्वजनिक अभिगम के स्थान का उपयोग करने या वहां पहुंचने से निवारित हो जाए जहां जनता के अन्य सदस्यों या उसके किसी भाग को उपयोग करने का या पहुंचने का अधिकार है ;

(xv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान, गांव या अन्य निवास-स्थान छोड़ने के लिए मजबूर करेगा या कराएगा,

वह, कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, दंडनीय होगा ।

(2) कोई भी व्यक्ति जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है –

(i) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को किसी ऐसे अपराध के लिए जो तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा मृत्यु दंड से दंडनीय है, दोषसिद्ध कराना है या वह यह जानता है कि इससे उसका दोषसिद्ध होना संभाव्य है, वह आजीवन कारावास से और जुर्माने से दंडनीय होगा ; और यदि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी निर्दोष सदस्य को ऐसे मिथ्या या गढ़े हुए साक्ष्य के फलस्वरूप दोषसिद्ध किया जाता है और फांसी दी जाती है तो वह व्यक्ति, जो ऐसा मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, मृत्यु दंड से दंडनीय होगा ;

(ii) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को ऐसे अपराध के लिए जो मृत्यु दंड से दंडनीय नहीं है किन्तु सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय है, दोषसिद्ध कराना है या वह यह जानता है कि उससे उसका दोषसिद्ध होना संभाव्य है, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष या उससे अधिक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(iii) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की किसी सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाना है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना संभाव्य है वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(iv) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा जिससे उसका आशय किसी ऐसे भवन को जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा साधारणतः पूजा के

स्थान के रूप में या मानव आवास के स्थान के रूप में या संपत्ति की अभिरक्षा के लिए किसी स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है, नष्ट करता है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना संभाव्य है, वह आजीवन कारावास से, और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध किसी व्यक्ति या सम्पत्ति के विरुद्ध इस आधार पर करेगा कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी सम्पत्ति ऐसे सदस्य की है, वह आजीवन कारावास से, और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(vi) यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि इस अध्याय के अधीन कोई अपराध किया गया है, वह अपराध किए जाने के किसी साक्ष्य को, अपराधी को विधिक दंड से बचाने के आशय से गायब करेगा या उस आशय से अपराध के बारे में कोई ऐसी जानकारी देगा जो वह जानता है या विश्वास करता है कि वह मिथ्या है, वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा ; या

(vii) लोक सेवक होते हुए इस धारा के अधीन कोई अपराध करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो उस अपराध के लिए उपबंधित दंड तक हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

4. कर्तव्यों की उपेक्षा के लिए दंड – कोई भी लोक सेवक, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, इस अधिनियम के अधीन उसके द्वारा पालन किए जाने के लिए अपेक्षित अपने कर्तव्यों की जानबूझकर उपेक्षा करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

5. पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि के लिए वर्धित दंड – कोई व्यक्ति, जो इस अध्याय के अधीन किसी अपराध के लिए पहले ही दोषसिद्ध हो चुका है,

दूसरे अपराध या उसके पश्चात्वर्ती किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो उस अपराध के लिए उपबंधित दंड तक हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

6. भारतीय दंड संहिता के कतिपय उपबंधों का लागू होना – इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 34, अध्याय 3, अध्याय 4, अध्याय 5, अध्याय 5क, धारा 149 और अध्याय 23 के उपबंध, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे भारतीय दंड संहिता के प्रयोजनों के लिए लागू होते हैं ।

7. कतिपय व्यक्तियों की संपत्ति का समपहरण – (1) जहां कोई व्यक्ति इस अध्याय के अधीन दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है, वहां विशेष न्यायालय, कोई दंड देने के अतिरिक्त, लिखित रूप में आदेश द्वारा, यह घोषित कर सकेगा कि उस व्यक्ति की कोई संपत्ति, स्थावर या जंगम, या दोनों, जिनका उस अपराध को करने में प्रयोग किया गया है, सरकार को समपहृत हो जाएगी ।

(2) जहां कोई व्यक्ति इस अध्याय के अधीन किसी अपराध का अभियुक्त है, वहां उसका विचारण करने वाला विशेष न्यायालय ऐसा आदेश करने के लिए स्वतंत्र होगा कि उसकी सभी या कोई संपत्ति, स्थावर या जंगम या दोनों, ऐसे विचारण की अवधि के दौरान, कुर्क की जाएगी और जहां ऐसे विचारण का परिणाम दोषसिद्धि है वहां इस प्रकार कुर्क की गई संपत्ति उस सीमा तक समपहरण के दायित्वाधीन होगी जहां तक वह इस अध्याय के अधीन अधिरोपित किसी जुर्माने की वसूली के प्रयोजन के लिए अपेक्षित है ।

8. अपराधों के बारे में उपधारणा – इस अध्याय के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजन में, यदि वह साबित हो जाता है कि –

(क) अभियुक्त ने इस अध्याय के अधीन अपराध करने के अभियुक्त व्यक्ति की, या युक्तियुक्त रूप से संदेहास्पद व्यक्ति की

कोई वित्तीय सहायता की है तो विशेष न्यायालय, जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न किया जाए, यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने उस अपराध का दुष्प्रेरण किया है ;

(ख) व्यक्तियों के किसी समूह ने इस अध्याय के अधीन अपराध किया है, और यदि यह साबित हो जाता है कि किया गया अपराध भूमि या किसी अन्य विषय के बारे में किसी विद्यमान विवाद का फल है तो यह उपधारणा की जाएगी कि यह अपराध सामान्य आशय या सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए किया गया था ।

9. शक्तियों का प्रदान किया जाना – (1) संहिता में या इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझती है, तो वह –

(क) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के निवारण के लिए और उससे निपटाने के लिए, या

(ख) इस अधिनियम के अधीन किसी मामले या मामलों के वर्ग या समूह के लिए,

किसी जिले या उनके किसी भाग में, राज्य सरकार के किसी अधिकारी को राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे जिले या उसके भाग में संहिता के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियां या, यथास्थिति, ऐसे मामले या मामलों के वर्ग या समूह के लिए, और विशिष्टतया किसी विशेष न्यायालय के समक्ष व्यक्तियों की गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियां प्रदान कर सकेगी ।

(2) पुलिस के सभी अधिकारी और सरकार के अन्य सभी अधिकारी इस अधिनियम के या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम, स्कीम या आदेश के उपबंधों के निष्पादन में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी की सहायता करेंगे ।

(3) संहिता के उपबंध, जहां तक हो सके, उपधारा (1) के अधीन किसी अधिकारी द्वारा शक्तियों के प्रयोग के संबंध में लागू होंगे ।

अध्याय 3
निष्कासन

10. ऐसे व्यक्ति का हटाया जाना जिसके द्‌वारा अपराध किए जाने की संभावना है – (1) जहां विशेष न्यायालय का, परिवाद या पुलिस रिपोर्ट पर, यह समाधान हो जाता है कि संभाव्यता है कि कोई व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 224 में यथानिर्दिष्ट 'अनुसूचित क्षेत्रों' या 'जनजाति क्षेत्रों' में सम्मिलित किसी क्षेत्र में इस अधिनियम के अध्याय 2 के अधीन कोई अपराध करेगा वहां वह, लिखित आदेश द्‌वारा, ऐसे व्यक्ति को यह निदेश दे सकेगा कि वह ऐसे क्षेत्र की सीमाओं से परे, ऐसे मार्ग से होकर और इतने समय के भीतर हट जाए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, और दो वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उस क्षेत्र में जिससे हट जाने का उसे निदेश दिया गया था, वापस न लौटे ।

(2) विशेष न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन आदेश के साथ उस उपधारा के अधीन निर्दिष्ट व्यक्ति को वे आधार संसूचित करेगा जिन पर वह आदेश किया गया है ।

(3) विशेष न्यायालय, उस व्यक्ति द्‌वारा जिसके विरुद्ध ऐसा आदेश किया गया है, या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्‌वारा आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर किए गए अभ्यावेदन पर ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे उपधारा (1) के अधीन किए गए आदेश को प्रतिसंहृत या उपान्तरित कर सकेगा ।

11. किसी व्यक्ति द्‌वारा संबंधित क्षेत्र से हटने में असफल रहने और वहां से हटने के पश्चात् उसमें प्रवेश करने की दशा में प्रक्रिया – (1) यदि कोई व्यक्ति जिसको धारा 10 के अधीन किसी क्षेत्र से हट जाने के लिए कोई निदेश जारी किया गया है –

(क) निदेश किए गए रूप में हटने में असफल रहता है ; या

(ख) इस प्रकार हटने के पश्चात् उपधारा (2) के अधीन विशेष न्यायालय की लिखित अनुज्ञा के बिना उस क्षेत्र में ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर प्रवेश करता है,

तो विशेष न्यायालय उसे गिरफ्तार करा सकेगा और उसे उस क्षेत्र के बाहर ऐसे स्थान पर, जो विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, पुलिस अभिरक्षा में हटवा सकेगा ।

(2) विशेष न्यायालय, लिखित आदेश द्वारा, किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके विरुद्ध धारा 10 के अधीन आदेश किया गया है, अनुज्ञा दे सकेगा कि वह उस क्षेत्र में जहां से हट जाने का उसे निदेश दिया गया था ऐसी अस्थायी अवधि के लिए और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, लौट सकता है और अधिरोपित शर्तों के सम्यक् अनुपालन के लिए उससे अपेक्षा कर सकेगा कि वह प्रतिभू सहित या उसके बिना, बंधपत्र निष्पादित करे ।

(3) विशेष न्यायालय किसी भी समय ऐसी अनुज्ञा को प्रतिसंहृत कर सकेगा ।

(4) ऐसा व्यक्ति, जो ऐसी अनुज्ञा से उस क्षेत्र में वापस आता है, जिससे उसे हटने के लिए निदेश दिया गया था, अधिरोपित शर्तों का अनुपालन करेगा और जिस अस्थायी अवधि के लिए लौटने की उसे अनुज्ञा दी गई थी उसके अवसान पर या ऐसी अस्थायी अवधि के अवसान के पूर्व ऐसी अनुज्ञा के प्रतिसंहृत किए जाने पर ऐसे क्षेत्र से बाहर हट जाएगा और धारा 10 के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के अनवसित भाग के भीतर नई अनुज्ञा के बिना वहां नहीं लौटेगा ।

(5) यदि कोई व्यक्ति अधिरोपित शर्तों में से किसी का पालन करने में या तद्नुसार स्वयं को हटाने में असफल रहेगा या इस प्रकार हट जाने के पश्चात् ऐसे क्षेत्र में नई अनुज्ञा के बिना प्रवेश करेगा या लौटेगा तो विशेष न्यायालय उसे गिरफ्तार करा सकेगा और उसे उस क्षेत्र के बाहर ऐसे स्थान को, जो विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, पुलिस अभिरक्षा में हटवा सकेगा ।

12. ऐसे व्यक्तियों के, जिनके विरुद्ध धारा 10 के अधीन आदेश किया गया है, माप और फोटो आदि लेना – (1) प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जिसके विरुद्ध धारा 10 के अधीन आदेश किया गया है, विशेष न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाने पर, किसी पुलिस अधिकारी को अपने माप और फोटो लेने देगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति, जिससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने माप या फोटो लेने दे, इस प्रकार माप या फोटो लिए जाने का प्रतिरोध करता है या उससे इनकार करता है, तो यह विधिपूर्ण होगा कि माप या फोटो लिए जाने को सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय किए जाएं ।

(3) उपधारा (2) के अधीन लिए जाने वाले माप या फोटो का प्रतिरोध या उससे इनकार करने को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 186 के अधीन अपराध समझा जाएगा ।

(4) जहां धारा 10 के अधीन किया गया आदेश प्रतिसंहृत कर दिया जाता है वहां उपधारा (2) के अधीन लिए गए सभी माप और फोटो (जिसके अंतर्गत नेगेटिव भी है) नष्ट कर दिए जाएंगे या उस व्यक्ति को सौंप दिए जाएंगे जिसके विरुद्ध आदेश किया गया था ।

13. धारा 10 के अधीन आदेश के अननुपालन के लिए शास्ति – वह व्यक्ति, जो धारा 10 के अधीन किए गए विशेष न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करेगा, कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ।

अध्याय 4

विशेष न्यायालय

14. विशेष न्यायालय – राज्य सरकार, शीघ्र, विचारण का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए एक सेशन न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट करेगी ।

15. विशेष लोक अभियोजक – राज्य सरकार, प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि-व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 5
प्रकीर्ण

16. राज्य सरकार की सामूहिक जुर्माना अधिरोपित करने की शक्ति – सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) की धारा 10क के उपबन्ध, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के अधीन सामूहिक जुर्माना अधिरोपित करने और उसे वसूल करने के प्रयोजनों के लिए और उससे संबद्ध सभी अन्य विषयों के लिए लागू होंगे ।

17. विधि और व्यवस्था तंत्र द्वारा निवारक कार्रवाई – (1) यदि जिला मजिस्ट्रेट या उपखंड मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट या किसी पुलिस अधिकारी को, जो पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, इत्तिला प्राप्त होने पर और ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह आवश्यक समझे, यह विश्वास करने का कारण है कि किसी ऐसे व्यक्ति या ऐसे व्यक्तियों के समूह द्वारा, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के नहीं हैं, और जो उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी स्थान पर निवास करते हैं या बार-बार आते-जाते हैं, इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने की संभावना है या उन्होंने अपराध करने की धमकी दी है और उसकी यह राय है कि कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है तो वह उस क्षेत्र को अत्याचारग्रस्त क्षेत्र घोषित कर सकेगा तथा शांति और सदाचार बनाए रखने तथा लोक व्यवस्था और प्रशांति बनाए रखने के लिए आवश्यक कार्रवाई कर सकेगा और निवारक कार्रवाई कर सकेगा ।

(2) संहिता के अध्याय 8, अध्याय 10 और अध्याय 11 के उपबंध, जहां तक हो सके, उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए लागू होंगे ।

(3) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक स्कीमें वह रीति विनिर्दिष्ट करते हुए बना सकेगी जिससे उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी अत्याचारों के निवारण के लिए तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों में सुरक्षा की भावना पुनः लाने के लिए स्कीम या स्कीमों में विनिर्दिष्ट समुचित कार्रवाई करेंगे ।

18. अधिनियम के अधीन अपराध करने वाले व्यक्तियों को संहिता की धारा 438 का लागू न होना – संहिता की धारा 438 की कोई बात इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने के अभियोग पर किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के किसी मामले के संबंध में लागू नहीं होगी ।

19. इस अधिनियम के अधीन अपराध के लिए दोषी व्यक्तियों को संहिता की धारा 360 या अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के उपबंध का लागू न होना – संहिता की धारा 360 के उपबंध और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) के उपबंध अठारह वर्ष से अधिक आयु के ऐसे व्यक्ति के संबंध में लागू नहीं होंगे जो इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है ।

20. अधिनियम का अन्य विधियों पर अध्यारोही होना - इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या किसी रूढ़ि या प्रथा या किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाले किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

21. अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करने का सरकार का कर्तव्य – (1) राज्य सरकार, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त बनाए, इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए ऐसे उपाय करेगी जो आवश्यक हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे उपायों के अंतर्गत निम्नलिखित हो सकेगा, –

(i) ऐसे व्यक्तियों को, जिन पर अत्याचार हुआ है, न्याय प्राप्त करने में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त सुविधाओं की, जिनके अंतर्गत विधिक सहायता भी है, व्यवस्था ;

(ii) इस अधिनियम के अधीन अपराध के अन्वेषण और विचारण के दौरान साक्षियों जिनके अंतर्गत अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति भी हैं यात्रा और भरणपोषण के व्यय की व्यवस्था ;

(iii) अत्याचारों से पीड़ित व्यक्तियों के आर्थिक और सामाजिक पुनरुद्धार की व्यवस्था ;

(iv) इस अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन के लिए अभियोजन प्रारंभ करने या उनका पर्यवेक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति ;

(v) ऐसे समुचित स्तरों पर, जो राज्य सरकार ऐसे उपायों की रचना या उनके क्रियान्वयन के लिए उस सरकार की सहायता करने के लिए ठीक समझे, समितियों की स्थापना करना ;

(vi) इस अधिनियम के उपबंधों के बेहतर क्रियान्वयन के लिए उपायों का सुझाव देने की दृष्टि से इस अधिनियम के उपबन्धों के कार्यकरण का समय-समय पर सर्वेक्षण करने की व्यवस्था ;

(vii) उन क्षेत्रों की पहचान करना जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर अत्याचार होने की संभावना है और ऐसे उपाय करना जिससे ऐसे सदस्यों की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके ।

(3) केन्द्रीय सरकार ऐसे उपाय करेगी जो उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपायों में समन्वय करने के लिए आवश्यक हों ।

(4) केन्द्रीय सरकार, प्रत्येक वर्ष, संसद् के प्रत्येक सदन के पटल पर इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में स्वयं उसके द्वारा और राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपायों के संबंध में एक रिपोर्ट रखेगी ।

22. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध या राज्य सरकार या सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

23. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संविधान संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in